राम
जन्म

तुलसी-राम-कथा : भाग १

रामजन्म

विश्वम्भरसहाय 'प्रेमी'

तुलसीकृत रामचरितमानस के
आधार पर भगवान राम की
सरस, रोचक एवं प्रेरक कथा

१९७५

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रथम बार : १९७५

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

•

मूल्य
४.०० रुपये

•

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली-९

प्रकाशकीय

हमारे देश में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसने राम का नाम न सुना हो और रामकथा से परिचित न हो। अपने देश में ही क्यों, संसार के अनेक देशों में राम-भक्ति की धारा प्रवाहित है। दक्षिण-पूर्व एशिया में तो समूचा लोकजीवन राम की भक्ति से ओतप्रोत है। सच बात तो यह है कि राम के नाम में और उनके चरित्र में कुछ ऐसा जादू है कि उनकी कथा को एक बार पढ़ लेने से तृप्ति नहीं होती, उसे बार-बार पढ़ने को जी चाहता है।

इस पुस्तकमाला के चार भागों में हमने राम के जीवन के प्रमुख प्रसंगों को लेकर सारी कथा इस प्रकार दी है कि सामान्य पढ़े-लिखे पाठक भी इसे आसानी से समझ सकते हैं। बीच-बीच में चुनी हुई चौपाइयां तथा दोहे भी दे दिये हैं, जिससे ये पुस्तकें और भी सरस तथा रोचक बन गई हैं।

इस पुस्तक का श्रीगणेश राम के जन्म से होता है। उनकी बाल-लीलाओं, विद्याभ्यास, विश्वामित्र की मांग, यज्ञ-रक्षा के लिए आश्रम में आगमन, सीता-स्वयंवर में भाग लेने के लिए जनकपुरी की ओर प्रस्थान, धनुष-भंग, परशुराम-संवाद, सीता के साथ विवाह तथा अयोध्या में पुनरागमन आदि प्रसंगों का बड़ा ही सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है। सारे प्रसंग के साथ चुनी हुई चौपाइयाँ-दोहों और अनेक चित्रों के कारण पुस्तक की उपयोगिता कई गुनी बढ़ गई है।

हमें पूरा विश्वास है कि सभी वर्गों और क्षेत्रों के पाठक इस तथा इस माला की अन्य पुस्तकों का पूरा लाभ न केवल स्वयं लेंगे, अपितु दूसरों को भी लेने की प्रेरणा देंगे।

—मंत्री

जबतक हमारी भारत भूमि में गंगा और कावेरी प्रवहमान हैं तबतक सीता-राम की कथा भी आबाल, स्त्री-पुरुष, सबमें प्रचलित रहेगी; माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

अनुक्रम

००००

राम-जन्म

राम-जन्म

: १ :

जन्म

हमारे देश में राम का नाम घर-घर लिया जाता है। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो इस नाम से परिचित न हो। यह शब्द कानों में पड़ते ही मन में भक्ति और प्रेम की लहर दौड़ने लगती है। बहुत-से लोग राम को भगवान का एक नाम मानते हैं। लेकिन बहुत-से यह भी मानते हैं कि भगवान ने पृथ्वी का बोझ हल्का करने के लिए मनुष्य के रूप में जन्म लिया था और अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र राम वही भगवान थे।

त्रेतायुग की बात है। राजा दशरथ अयोध्यापुरी में राज करते थे। कहते हैं, पहले जन्म में उन्होंने तपस्या की थी। तब भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया था कि अगले जन्म में वह स्वयं उनके घर पुत्र-रूप में जन्म लेंगे। इसलिए इस जन्म में भगवान के लिए राजा दशरथ के मन में बड़ा प्रेम था। वह बड़े गुणवान और वीर पुरुष थे। वह दस महारथियों से एक-साथ युद्ध कर सकते थे। इसीलिए उनका नाम दशरथ पड़ गया था। उनकी तीन रानियां थीं—कौशल्या, सुमित्रा और

कैकेयी । तीनों बड़ी सुशील, सुन्दर और आचारवती थीं । वे अपने पति से बहुत प्रेम करती थीं । भगवान के चरणों में भी उनका बड़ा प्रेम था । उन्हें सब सुख प्राप्त था; पर उनके कोई पुत्र न था । वंश कैसे चलेगा, यह सोच-सोचकर राजा बहुत दुखी रहते थे । जब वह बूढ़े हो चले तब उनका यह दुःख बहुत ही बढ़ गया । आखिर एक दिन अपनी यह चिन्ता लेकर वह गुरु वसिष्ठ के पास पहुंचे ।

गुरु वसिष्ठ सबकुछ जानते थे । उन्होंने राजा को विश्वास दिलाया कि उनके पुत्र अवश्य पैदा होगा; उन्हें दुखी नहीं होना चाहिए । वह पुत्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध होगा । अपने पराक्रम से वह धरती का भार हल्का करेगा । इस प्रकार राजा को समझा-बुझाकर उन्होंने शृङ्गी ऋषि को बुलवाया । उन्होंने आकर राजा के लिए एक यज्ञ किया । इस यज्ञ को पुत्रेष्टियज्ञ कहते हैं । इस यज्ञ के बाद राजा के घर चार पुत्र हुए। सबसे पहले जिस पुत्र का जन्म हुआ वह राम के नाम से प्रसिद्ध हुए । वह देवी कौशल्या के पुत्र थे । जिस दिन उनका जन्म हुआ उस दिन चैत्र मास की नौमी थी । शुक्ल-पक्ष था, दोपहर का समय। न बहुत सरदी थी, न बहुत गरमी । हल्की-हल्की ठंडी हवा चल रही थी । देवता हर्ष मना रहे थे । संत जनों के हृदय में बड़ा उत्साह पैदा हो रहा था ।

नौमी तिथि मधुमास पुनीता ।
सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ।।
मध्य दिवस अति सीत न घामा ।
पावन काल लोक-बिस्रामा ।।

सीतल मन्द सुरभि वह बाऊ।
हरषित सुर संतन्ह मन चाऊ॥

रामजन्म
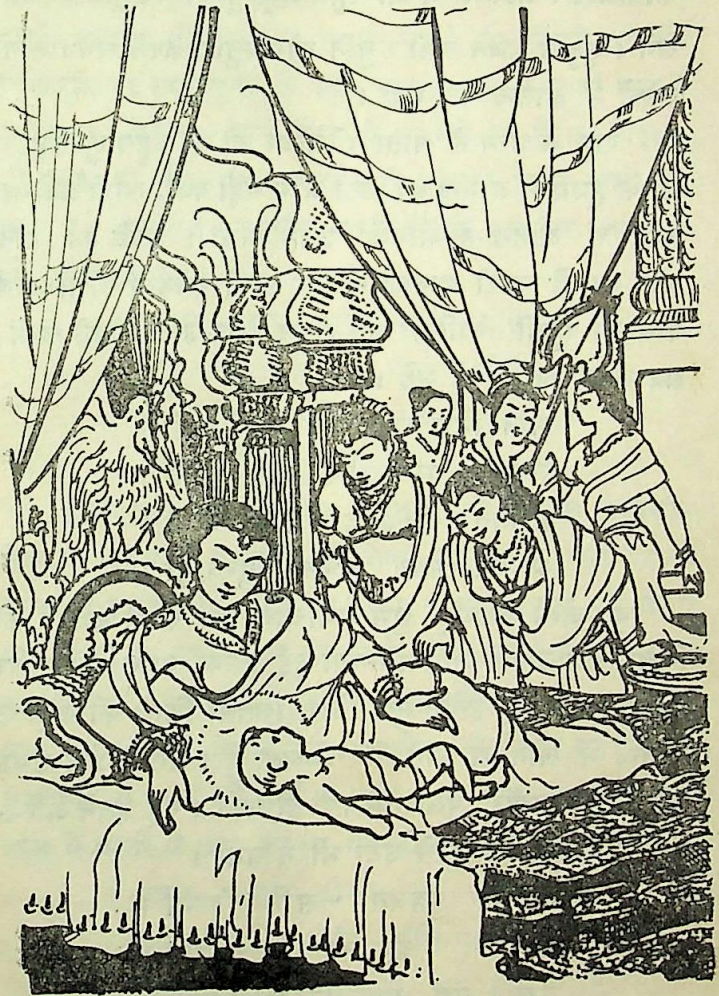
इस मंगलमय अवसर पर सारे देवता अपने-अपने विमानों को सजाकर आकाश में आ पहुंचे और पृथ्वी पर फूल बरसाने लगे। दुंदुभि बजने लगी। मुनि लोग स्तुति करने लगे। तीनों लोकों में आनन्द छा गया।

राम के जन्म से माता कौशल्या को भी बहुत खुशी हुई। उनके हृदय में आनन्द भर उठा और वही क्यों, सारी अयोध्या नगरी में आनन्द-ही-आनन्द उमड़ आया। बच्चे का रोना और उसकी प्यारी आवाज सुनकर सारी रानियां कौशल्या के पास आ पहुंचीं। दासियां खुश होकर इधर-उधर दौड़ने लगीं। सब लोग पुलकित हो उठे।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी।
संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहं तहं धाईं दासी।
आनन्द मगन सकल पुरवासी॥

पुत्र-जन्म का यह शुभ समाचार जब राजा दशरथ को मिला तब उनको जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन कौन कर सकता है! उन्हें इतना सुख मिला जितना किसी को ब्रह्म के आनन्द में लीन हो जाने पर मिलता है। मन में प्रेम उमड़ आया और शरीर पुलकायमान हो उठा। वह इतने आत्म-विभोर हो गए कि उनसे उठा भी न गया।

दसरथ पुत्रजनम सुनि काना।
मानहुं ब्रह्मानंद समाना॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा।
चाहत उठन करत मति धीरा॥

यह ठीक ही था । अबतक वह पुत्र के लिए तरस रहे थे । बुढ़ापे में उन्हें पुत्र का मुख देखने को मिला था । उनके लिए इससे बढ़कर और क्या हो सकता था ! वह सोचने लगे कि जिस हरि का नाम सुनने से परम सुख मिलता है उन्हीं प्रभु ने आज स्वयं मेरे घर जन्म लिया है । उनके मन में यह निश्चय हो चुका था कि स्वयं भगवान ही अवतार लेकर उनके घर आए हैं । इसलिए उन्होंने बाजेवालों को बुलाकर आज्ञा दी कि बाजे बजाओ ।

जाकर नाम सुनत सुभ होई ।
मोरे गृह आवा प्रभु सोई ।।
परमानन्द पूरि मन राजा ।
कहा बोलाइ बजावहु बाजा ।।

इसके बाद राजा दशरथ ने गुरु वसिष्ठ के पास समाचार भेजा । बहुत-से ब्राह्मणों को लेकर वह तुरन्त वहां आए । राजा ने ब्राह्मणों को बहुत-सा सोना, वस्त्र, मणियां और गउएं दान में दीं । उधर सब नर-नारी नगर सजाने में जुट गये । देखते-देखते झंडे-झंडियों और बंदनवारों से सारा नगर भर गया । इस समय की सजावट का वर्णन नहीं किया जा सकता । आकाश से फूलों की वर्षा हो रही थी । नगर-निवासी इतने मग्न थे मानो वे ब्रह्म को पा गये हों ।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा ।
कहि न जाय जेहि भाँति बनावा ।।
सुमन वृष्टि आकास तें होई ।
ब्रह्मानंद-मगन सब कोई ।।

नगर की महिलाओं के प्रेम का तो कहना ही क्या था ! झुंड बनाकर वे महलों की ओर चलीं। वे इतनी जल्दी में थीं कि नए अस्त्र और आभूषण पहनना भी भूल गईं। जैसी बैठी थीं वैसी ही उठकर दौड़ पड़ीं। किसी प्रकार का कोई बनाव-शृङ्गार नहीं किया। सोने के कलश हाथ में लेकर और मंगल द्रव्यों से थाल भरकर वे तुरन्त राजा के द्वार पर जा पहुंची।

बृन्द बृन्द मिलि चलीं लोगाईं।
सहज सिंगार किए उठि धाईं॥
कनक कलस मंगल भरि थारा।
गावत पैठहिं भूप-दुआरा॥

अन्दर जाकर उन्होंने बच्चे की आरती उतारी। उसके ऊपर अनेक प्रकार की वस्तुएं वारने लगीं। वे बार-बार उसके चरण छूती थीं। वे उसे साधारण बालक नहीं मानती थीं। भगवान समझती थीं।

करि आरती निछावरि करहीं।
बार-बार सिसु चरनन्हि परहीं।

जब महलों में इस प्रकार आनंद मनाया जा रहा था तभी उसके सामने गाने-बजानेवाले और रघुकुल की वंशावलि बखानने वाले वहां इकट्ठे हो गए। वे रघुकुल के पावन चरित्र गाने लगे और अयोध्यावासियों ने अपना सबकुछ दान करना आरंभ कर दिया। जिसके पास जो कुछ भी था वह उसीको दान करने लगा। ऐसे आनन्द के अवसर पर वे अपने पास कुछ भी नहीं रखना चाहते थे। नगर की सब गलियों में कस्तूरी,

चन्दन और केसर की कीच-सी दिखाई देने लगी, क्योंकि नगर-वासियों ने गलियों में सुगंध फैलाने के लिए इन वस्तुओं का दिल खोलकर प्रयोग किया था।

सरबस दान दीन्ह सब काहू।
जेहि पावा राखा नहिं तांहू॥
मृग-मद-चन्दन कुंकुम कीचा।
मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥

घर-घर में बधाई बजने लगी। क्यों न बजती! उनके राजा के घर में शोभा के धाम भगवान राम जो पैदा हुए थे। इसलिए नगर के सभी नर और नारियां आनन्द में मग्न हो उठे थे। उनका वह आनन्द तब और भी बढ़ गया जब उन्हें पता लगा कि राजा की दूसरी दोनों रानियों के भी पुत्र पैदा हुए हैं।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ।
सुन्दर सुत जन्मत भइं ओऊ॥

इन दोनों रानियों का नाम कैकेयी और सुमित्रा था। उनके पुत्र भी कौशल्या के पुत्र के समान सुन्दर और सुख के देने वाले थे। सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। इस प्रकार राजा के चार पुत्र हो गए। अवधपुरी में सब ओर शोभा-ही-शोभा दिखाई देने लगी। घरों में, राजमहलों में वेद-मन्त्र गूंजने लगे। इस प्रकार आनन्द-मंगल मनाने में एक महीना बात-की-बात में बीत गया। यह आनन्द-मंगल इतना कौतुकपूर्ण था कि एक बार तो सूर्य भी रुककर उसे देखने लगा।

इस आनन्द के अवसर पर जो जिस प्रकार आया और

जिसने जो भी चाहा, राजा दशरथ ने उसे वही दिया। हाथी, घोड़े, रथ, गउएं, सोना, हीरे और नाना प्रकार के वस्त्र बांटे गए। सब सन्तुष्ट होकर असीस देने लगे कि राजा के सभी पुत्र चिरंजीवी हों।

: २ :

नामकरण

आनन्द-उत्सव और दान-दक्षिणा करते हुए जब कुछ दिन बीत गए तो बालकों के नामकरण-संस्कार करने का प्रश्न उठा। राजा ने तुरन्त गुरु वसिष्ठ को सन्देशा भेजा, क्योंकि वही उनके कुल-गुरु थे। उनकी आज्ञा के बिना कोई भी मंगल-कार्य नहीं हो सकता था। सन्देशा पाकर वसिष्ठ महलों में आ पहुंचे। राजा ने उनका उचित आदर-सत्कार करके सबसे पहले उनकी पूजा की। फिर उनसे प्रार्थना की, "गुरुदेव, अब आप इन बालकों के नाम रखिये।" गुरु वसिष्ठ बोले, इनके तो बहुत अच्छे-अच्छे नाम हैं। अपनी बुद्धि के अनुसार उनमें से चुनकर मैं आपको बताता हूं।" कौशल्या के पुत्र की ओर संकेत करके गुरुजी बोले, "यह जो बालक आनन्द और सुख का सागर है, तीनों लोकों में वास करनेवाला है। इस सुख के धाम बालक का नाम राम है। यह राम संसार भर को आनन्द और शान्ति देनेवाला है।"

जो आनंद सिन्धु सुखरासी।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥

सो सुखधाम राम अस नामा।
अखिल लोकदायक बिस्रामा॥

इस सुख के धाम बालक का नाम राम है

इसके पश्चात् वह कैकेयी के पुत्र की ओर मुड़कर बोले—

बिस्वभरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई।।

जो संसार का भरण-पोषण करनेवाला है, उसका नाम भरत होना चाहिए।

इसके बाद उन्होंने सुमित्रा के दोनों पुत्रों की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह जो बड़ा पुत्र है और जो सब लक्षणों का धाम है, जो राम का अत्यन्त प्यारा है और जो सारे संसार का सहारा है, उसका नाम लक्ष्मण होगा।

लच्छन धाम रामप्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

तीनों पुत्रों के नाम रखने के बाद उन्होंने सबसे छोटे पुत्र की ओर देखा और बोले—

जाके सुमिरन तें रिपु-नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।

जिसके याद करने से शत्रु का नाश हो उसका नाम शत्रुघ्न रखना ही उचित है।

इस प्रकार नाम रख लेने के बाद वह राजा दशरथ से बोले, "हे राजन्! तुम्हारे चारों पुत्र वेदों को जाननेवाले, ऋषि-मुनियों को सुख देनेवाले, भक्त-जनों के आराध्य और शिवजी के प्राण हैं।"

राजा यह वचन सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। वही क्या, सब रानियाँ, राजपुरुष और नगर-निवासी सभी की प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं था। बड़ी तपस्या के बाद उन्हें

इन राजकुमारों के दर्शन हुए थे। उसपर ये राजकुमार इतने प्रतिभाशाली थे, सो वे अब प्रसन्न नहीं होते तो और कब होते !

: ३ :

बाल-लीला

इस प्रकार राजा के चारों पुत्र धीरे-धीरे बड़े होने लगे। इन चारों का आपस में बड़ा प्यार था, फिर भी लक्ष्मण तो अधिकतर राम के साथ रहते थे। राम को ही उन्होंने अपना परम-हितैषी और स्वामी समझ लिया था। यों तो वह सबसे प्रेम करते, पर उनकी सबसे अधिक प्रीति रामचन्द्र में ही थी। इसी प्रकार उनके छोटे भाई शत्रुघ्न कैकेयी के पुत्र भरत को सबसे अधिक प्रेम करते थे और उनको अपना स्वामी मानते थे।

बारेहि तें निज हित पति जानी।
लछिमन राम चरन रति मानी॥
भरत सत्रुहन दूनौ भाई।
प्रभुसेवक जसि प्रीति बड़ाई॥

राम श्यामल रंग के थे और लक्ष्मण का रंग गोरा था। इन दोनों की जोड़ी बहुत सुन्दर लगती थी। माताएं उन्हें देखतीं, बार-बार देखतीं। मन में बहुत प्रसन्न होतीं और तिनके तोड़ने लगतीं कि कहीं इनको नजर न लग जाय। वैसे तो वे चारों पुत्र रूप, शील और गुण की खान थे, परन्तु उनमें भी राम सबसे अधिक सुन्दर, शीलवान और गुणवान थे।

उनका हृदय चन्द्रमा के समान प्रकाशमान था। नीले कमल के समान उनका मुख हमेशा खिला रहता था। जब वह हँसते थे तो मन मोहनेवाली किरणें फूटने लगती थीं। माता कभी उन्हें गोद में उठा लेती और कभी पालने में लिटाकर झुलाने लगतीं। वह उनको तरह-तरह से सजाती थीं। उनके हाथ-पैरों में नाना भाँति के सोने के आभूषण पहनाती थीं। उनके वस्त्र बहुत ही मूल्यवान और सुन्दर थे।

जिस प्रकार राम का शृङ्गार और लाड़-प्यार होता था, उसी प्रकार दूसरी माताएँ अपने पुत्रों का लाड़-प्यार करती थीं। नाना प्रकार से उन्हें सजातीं और उन्हें देख-देखकर आनन्द में मग्न हो उठती थीं।

इस प्रकार जब उन चारों भाइयों को देख-देखकर माताएं सुख पा रहीं थीं तब एक बार राम ने अपनी माता कौशल्या को खेल-खेल में अपना विराट रूप दिखा दिया। माता भयभीत हो उठीं। यह देखकर राम तुरन्त ही फिर अपने बालक रूप में आ गए। लेकिन कौशल्या तो राम के उस रूप को देख चुकी थीं। वह उनकी विनती करने लगीं, "हे प्रभु, बार-बार मैं आपसे यह विनती करती हूं कि आपकी इस तरह की माया का मुझे फिर कभी दर्शन न हो।"

बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापई प्रभु मोहि माया तोरि॥

इसी प्रकार समय बीतता गया और वे चारों भाई बड़े होते गए। उन्हीं के साथ-साथ कुटुम्बी-जनों का सुख भी बढ़ता गया। इन्हीं दिनों गुरु वसिष्ठ ने उनका चूड़ा-कर्म संस्कार कराया।

और राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत-सी दक्षिणा दी।

राजा दशरथ अपने इन पुत्रों को देखते और अपने भाग्य को सराहते। अब वे बड़े हो गये थे और खेलने के लिए बाहर चले जाते थे। राजा जब भोजन करने के लिए महलों में आते तो वे अपने पुत्रों को अपने पास बुलाते, परन्तु उनको तो अपने साथियों के साथ खेलना ही अधिक अच्छा लगता था। इसलिए वे अपने बालक-समाज को छोड़कर राजा के बुलाने पर कभी नहीं आते थे। तब राजा उनकी माताओं से कहते। माताएँ अपने पुत्रों को तरह-तरह से रिझाकर राजा के पास लेकर आतीं।

कोसल्या जब बोलन जाई।
ठुमकि-ठुमकि प्रभु चलहिं पराई॥
... ...
धूसर धूरि भरे तनु आये।
भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

कौशल्या जब राम को बुलाने जाती हैं तो राम साधारण बालकों के समान ठुमक-ठुमककर दूर भाग जाते हैं। माता बड़ा प्रयत्न कर पाने पर उन्हें पकड़ पातीं और राजा के पास ले जातीं। उनका सारा शरीर धूल से भरा हुआ होता था, परन्तु भला मां-बाप इन बातों की चिन्ता कब करते हैं! राजा दशरथ भी हँस पड़ते और बड़े प्रेम से उनको अपनी गोदी में बैठा लेते।

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकात मुख, दधि-ओदन लिपटाइ॥

राम गोदी में तो बैठ जाते, परन्तु वह शांति से भोजन नहीं करते थे। बड़े चंचल थे, जरा भी अवसर पाते तो गोदी से निकल भागते और किलकारी मारते। फिर पकड़े जाते और राजा उनको खिलाते तो उनके मुख पर दही और भात लग जाता। इसी तरह राम और उनके भाई हँसते-खेलते बहुत सुन्दर लगते थे और अपने माता-पिता को बहुत सुख देते थे।

: ४ :

विद्याभ्यास

जब वे और बड़े हुए तो नियमानुसार उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। उसके बाद वे विद्या पढ़ने के लिए गुरु वसिष्ठ के आश्रम में जाकर रहने लगे।

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई।
अलप काल विद्या सब पाई॥

थोड़े समय में ही उन्होंने सब विद्याएं पढ़ लीं। जिनको चारों वेद स्मरण हैं, जिनके सांस में वेद का ज्ञान बस रहा है, वे राम गुरु के आश्रम में पढ़ने के लिए गये! यह बड़ा अद्भुत-सा लगता है, परन्तु उन्होंने तो मनुष्य का रूप धारण किया था, इसलिए वह सब काम मनुष्य के समान ही करते थे। देखते-देखते विद्या, विनय, गुण और शील में वे चारों भाई निपुण हो गए। वे राजाओं के समान खेले जानेवाले सब खेलों का भी खेलना सीख गए। हाथों में धनुष और बाण लिए वे बड़े शोभायमान लगते थे। उनके इस रूप को देखकर संसार के सब

चर और अचर प्राणी मोहित हो जाते थे। जिस मार्ग से होकर वे जाते, जिन गलियों में वे प्रवेश करते, वहां पर जो भी स्त्री-पुरुष खड़े होते वे उनको देखकर ठिठक जाते। उनके मन में प्रेम उमड़ पड़ता और वे उनको देख-देख कभी नहीं अघाते थे।

अयोध्या में जितने भी नर-नारी, बूढ़े और बालक थे उन सबको रामचन्द्र प्राणों से भी अधिक प्यारे लगते थे।

विद्या विनय निपुन गुनसीला।
खेलहिं खेल सकल नृपलीला।।
करतल बान धनुष अति सोहा।
देखत रूप चराचर मोहा।।
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई।
थकित होहिं सब लोग लुगाई।।

कोसलपुरबासी नर नारि वृद्ध अरु बाल।
प्रानहुं तें प्रिय लागहिं सब कहँ रामकृपाल।।

जब राम और उनके दूसरे भाई जंगल में जाते थे तो वे अपने मित्रों को भी बुला लेते थे। जिस तरह से भी अयोध्या-पुरी के नर-नारी प्रसन्न हों और उन्हें आनन्द मिले ऐसे ही काम राम सदा करते थे।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा।
करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।।

भगवान राम अकेले भोजन नहीं करते थे। अपने छोटे भाइयों और सखाओं को भी साथ ले लेते थे। इससे सामूहिक भोजन का आनन्द मिल जाता था।

राम अपने माता-पिता की आज्ञा के अनुसार ही सब काम करते थे।

अनुज सखा संग भोजन करहीं।
मातु पिता आग्या अनुसरहीं॥

राम वेद और पुराणों को मन लगाकर सुनते और उनको अच्छी तरह समझकर फिर छोटे भाइयों को समझाते। सवेरे उठते ही वे माता, पिता और गुरु के चरणों में प्रणाम करते। उनसे आज्ञा लेकर घर का काम-काज करते। उनका इस प्रकार का व्यवहार देखकर राजा मन-ही-मन बहुत प्रसन्न होते थे।

वेद पुरान सुनहिं मन लाई।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठिकै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मांगि करहिं पुरकाजा।
देखि चरित्र हरषै मन राजा॥

जो भगवान सब जगह रहनेवाले हैं, जिनकी बुद्धि की कोई थाह नहीं, जो इच्छारहित हैं, जो कभी जन्म नहीं लेते, जो निर्गुण हैं, जिनका न कोई रूप है और न कोई नाम है, वे ही अपने भक्तों की भलाई के लिए तरह-तरह के चरित्र किया करते और उनको देख-देखकर राजा दशरथ और उनका परिवार सुख पाता था। उन चारों भाइयों की माताओं के हर्ष का तो कहना ही क्या ? ऐसे सुन्दर, सुशील और गुणवान पुत्र पाकर वे सदा अपने भाग्य को सराहती रहती थीं। सच तो

यह है कि सारी अयोध्या नगरी चारों भाइयों का दर्शन करके आनन्द में मग्न हो उठी थी, विशेषकर राम तो उस नगरी के लिए परम शोभा के धाम बन गए थे।

: ५ :

विश्वामित्र की मांग

राम के समय में विश्वामित्र बहुत ही तेजस्वी महात्मा हुए हैं। वह जन्म के क्षत्रिय थे, परन्तु घोर तप करने के बाद उन्होंने महामुनि का पद पाया था। जिस समय महाराज दशरथ के चारों पुत्र किशोर हुए उस समय महामुनि विश्वामित्र एक महायज्ञ करने में लगे हुए थे। लेकिन राक्षस-जाति के लोग उनकी तपस्या में बाधा डाला करते थे और उनका यज्ञ बिगाड़ देते थे। यही नहीं, जहां-जहां मुनि लोग जप, यज्ञ आदि आरम्भ करते थे, वहीं ये राक्षस लोग पहुंच जाते थे। विशेषकर मारीच और सुबाहु नाम के राक्षसों से विश्वामित्र बहुत भय खाते थे। वे लोग बहुत उपद्रव करते और उनको बेहद दुःख पहुंचाते थे।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं।
अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं।
करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

इससे महामुनि विश्वामित्र के मन में चिंता पैदा हो गई। सोचने लगे, इन राक्षसों का कैसे नाश किया जाय। तभी उनके मन में एक विचार आया कि महाराज दशरथ के पुत्र राम ही

इनका विनाश कर सकते हैं। राम साधारण मानव नहीं हैं। स्वयं भगवान ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए राम-रूप में जन्म लिया है। चलो, इस बहाने मैं भी उनके दर्शन कर लूंगा। महाराज दशरथ से विनती करके राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को यहां ले आऊंगा। वे प्रभु तो ज्ञान वैराग्य आदि सारे गुणों के धाम हैं। मैं अच्छी प्रकार जी भरकर उनके दर्शन करूंगा।

एहू मिस देखउं पद जाई।
करि बिनती आनउं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना।
सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

इस प्रकार निश्चय करके वह अयोध्यापुरी की ओर चल पड़े। शीघ्र ही वे सरयू नदी के किनारे पहुंच गए। वहां उन्होंने स्नान किया और फिर राजमहल की ओर चल दिए। उसी समय महाराज दशरथ को उनके आने का समाचार मिला। वह तुरन्त ब्राह्मणों की मंडली लेकर उनसे मिलने के लिए आगे आये। दण्डवत-प्रणाम करके उनका उचित सम्मान किया और अन्दर ले जाकर उन्हें ऊंचे आसन पर बैठाया। यहां फिर नाना प्रकार से उनकी पूजा की। बोले, "आज मेरे समान दूसरा कौन भाग्यवान होगा!"

इस प्रकार सम्मान पाकर विश्वामित्र मन में बहुत प्रसन्न हुए। इसी समय महाराज दशरथ ने अपने चारों पुत्रों को बुलाया और उनके चरणों में झुका दिया। चारों भाइयों ने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। रामचन्द्रजी को देखकर तो

चारों पुत्रों को देखकर विश्वामित्र बहुत प्रसन्न हुए

महामुनि विश्वामित्र अपनी सुध-बुध भूल गए। उनके मुख की अपार शोभा ने उन्हें मुग्ध कर दिया। वह इस प्रकार मग्न

हो गए जिस प्रकार चकोर पूर्ण चन्द्र को देखकर लुभायमान हो जाता है ।

पुनि चरनन्हि मेले सुत चारी ।
राम देखि मुनि देह बिसारी ।।
भए मगन देखत मुख-शोभा ।
जनु चकोर पूरन ससि लोभा ।।

इस प्रकार आदर-सत्कार करने के बाद महाराज दशरथ ने पूछा, "मुनिराज ! आपने आज मेरे घर पधारने की जो कृपा की है, उसके लिए मैं सदा आभारी रहूंगा । आपने ऐसी कृपा पहले क्यों नहीं की । बताइए, आपका आगमन किसलिए हुआ है ? आपकी आज्ञा का पालन करने में मैं तनिक भी देर नहीं लगाऊंगा ।"

तब मन हरषि बचन कह राउ ।
मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ।।
केहि कारन आगमन तुम्हारा ।
कहहु सो करत लावौं बारा ।।

राजा के इस प्रकार प्रेमभरे वचन सुनकर महामुनि बोले, "राजन् ! ये राक्षस-जाति के लोग मुझे बहुत कष्ट पहुंचाते हैं । मैं आपसे एक भीख मांगने के लिए आया हूं । मुझे आप छोटे भाई लक्ष्मण सहित रामचन्द्र को दे दीजिए । वे उन राक्षसों को मार डालेंगे और इस प्रकार मेरी रक्षा हो जायगी । राजन्, मन में दुखी मत होना, प्रसन्न होकर इन दोनों भाइयों को मुझे दे दो । ममता और अज्ञान को त्याग दो । ऐसा करने से तुमको धर्म और यश दोनों मिलेंगे,

तुम्हारा परम कल्याण होगा।"

असुर समूह सतावहिं मोही।
मैं जाचन आयेउं नृप तोही॥
अनुजसमेत देहु रघुनाथा।
निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौ इन्ह कहँ अति कल्याण॥

महाराज ने जब यह अप्रिय बात सुनी तो बहुत दुखी हुए। उनका मुख कुम्हला गया। हृदय कांपने लगा। सोचने लगे—इस बुढ़ापे में तो मुझे ये पुत्र प्राप्त हुए हैं। इन्हींको मुनि महाराज ले जाना चाहते हैं। नहीं, इन्होंने यह बात सोचकर नहीं कही है। वह बोले, "हे महामुनि, आप धरती, गऊ, धन सब कुछ मांग लीजिए, मैं खुशी-खुशी अपना सब कुछ दे दूंगा। शरीर और प्राण से अधिक प्यारा कुछ भी नहीं होता, वह भी मैं दे दूंगा। एक क्षण की भी देर नहीं लगाऊंगा।"

सुनि राजा अति अप्रिय बानी।
हृदय कांप मुख-दुति कुम्हिलानी॥
चौथेपन पायऊँ सुत चारी।
बिप्र बचन नहीं कहेहु बिचारी॥
मांगहु भूमि धेनु धन कोसा।
सरबस देउँ आजु सह रोसा॥
देह प्राण तें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउँ निमष एक माहीं॥

"सब पुत्र मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं, लेकिन राम

को तो मैं किसी प्रकार भी नहीं दे सकता। मुनिराज, सोचिए तो सही, कहां तो वे महा-भयंकर और कठोर राक्षस और कहां ये सुन्दर और किशोर अवस्थावाले बालक !"

सब सुत प्रिय मोहिं प्रान की नाईं।
राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा।
कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा॥

इस प्रकार महाराज दशरथ उनसे निवेदन कर रहे थे। वह अपने पुत्रों को देने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। लेकिन विश्वामित्र भी अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को मांगने आए थे। जब उन्होंने देखा कि महाराज अपने पुत्रों को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं तो उन्हें क्रोध नहीं आया बल्कि उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। मानों राजा का पुत्रों पर इतना प्रेम देखकर उनके मन में भी कोमल भावना जाग उठी हो। परन्तु महाराजा दशरथ के कुल गुरु वसिष्ठ सब-कुछ देख रहे थे और सब-कुछ समझ भी रहे थे। वह समझ रहे थे कि राम और लक्ष्मण का महामुनि विश्वामित्र के साथ जाना उचित है। इसलिए वे महाराजा दशरथ को नाना प्रकार से समझाने लगे। उनके इस प्रकार समझाने से तनिक-सी देर में ही राजा के सब सन्देह दूर हो गए।

तब वसिष्ठ बहु विधि समझावा।
नृप-सन्देह - नास कहँ पावा॥

अब तो महाराजा दशरथ ने बड़े आदर के साथ अपने दोनों पुत्रों को बुलाया। जब वे आगए तो प्रेम में भरकर उनको अपने

हृदय से लगा लिया और नाना प्रकार से उनको सीख देने लगे। मुनि विश्वामित्र से बोले, "हे महामुनि, ये दोनों पुत्र मेरे प्राणों के समान हैं। अब आप ही इनके पिता हैं और कोई दूसरा कुछ नहीं।"

अति आदर दोउ तनय बोलाये।
हृदय लाइ बहुभाँति सिखाये॥
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ।
तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

इस प्रकार महाराजा दशरथ ने अपने पुत्रों को महामुनि विश्वामित्र को सौंप दिया। दोनों भाई वहां से अपनी माताओं के पास गए और उनको प्रणाम करके तथा उनका आशीर्वाद लेकर वे मुनि विश्वामित्र के पास लौट आये। वे दोनों भाई जो पुरुषों में सिंह के समान थे, मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए मुनि के साथ उनके कष्ट दूर करने के लिए चल दिए। राम-कृपा के सागर हैं, धैर्यवान हैं, सारे संसार का कष्ट दूर करने वाले हैं। उनके नेत्र लाल रंग के हैं। उनकी छाती चौड़ी है। भुजाएं विशाल हैं। नील कमल और तमाल वृक्ष के समान उनका शरीर श्याम है। वह पीताम्बर पहने हुए हैं। कमर में

राजा दशरथ ने अपने पुत्रों को मुनि विश्वामित्र को सौंप दिया।

तरकस कसा है। दोनों हाथों में धनुष-बाण हैं।

पुरुषसिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भयहरन।
कृपासिंधु मति धीर, अखिल-बिस्व-कारनकरन॥
अरुन नयन उर-बाहु बिसाला।
नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसे बर माथा।
रुचिर चाप सायक दुहुं हाथा॥

विश्वामित्र मुनि ने श्याम और गोरे वर्ण दोनों भाई, श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी को पा लिया। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों उन्हें कोई महान निधि मिल गई हो।

स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई।
बिस्वामित्र महानिधि पाई॥

: ६ :

यज्ञ-रक्षा

इस प्रकार महामुनि विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को लेकर अपने आश्रम की ओर प्रस्थान किया। जैसे ही उन्होंने वन में प्रवेश किया ताड़का नाम की राक्षसी को उनके आने का समाचार मिल गया। क्रोध में भरकर वह उन पर चढ़ दौड़ी। परन्तु राम क्या किसीसे डरनेवाले थे? उन्होंने एक ही बाण में उसको मार डाला। लेकिन वह एक दीन स्त्री थी, राम को उसपर दया आगई और उन्होंने उसको अपना पद प्रदान किया, अर्थात् उसको पापों से मुक्ति दे दी।

ताड़का-बध

चले जात मुनि दीन्हि देखाई ।
सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा ।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।।

राम की यह वीरता देखकर महामुनि विश्वामित्र उनसे बड़े प्रभावित हुए । वह यह जानते थे कि राम भगवान हैं और उन्हें सब विद्याएँ प्राप्त हैं । फिर भी उन्होंने उन्हें कुछ और विद्याएँ सिखाईं, जिससे उन्हें भूख और प्यास न लगे और उनके शरीर में अपार बल तथा तेज बना रहे । उन्होंने राम और लक्ष्मण को अपने सारे अस्त्र-शस्त्र भी सौंप दिए । इसके पश्चात् वह उनको अपने आश्रम में ले गए । बड़े प्रेम से उनको भोजन कराया । रात्रि को विश्राम करने के बाद सवेरा होते ही राम ने महामुनि विश्वामित्र से कहा, "हे मुनिराज, अब आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें । निर्भय और निःशंक होकर यज्ञ करें ।"

प्रात कहा मुनि सन रघुराई ।
निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ।।

राम की ये बातें सुनकर विश्वामित्र दूसरे ऋषियों के साथ निर्भय होकर यज्ञ करने लगे । दोनों भाई उनके यज्ञ के रक्षक बन गए ।

जिस समय मारीच को यह समाचार मिला और उसने यज्ञ करने का शब्द सुना तो वह अपने बहुत से सहायकों को लेकर वहां आ पहुंचा । राम और लक्ष्मण तो तैयार खड़े ही थे । राम ने तुरन्त बिना फलकेवाला एक बाण मारीच को मारा ।

उसके लगते ही मारीच सौ योजन दूर समुद्र पार जा गिरा ।
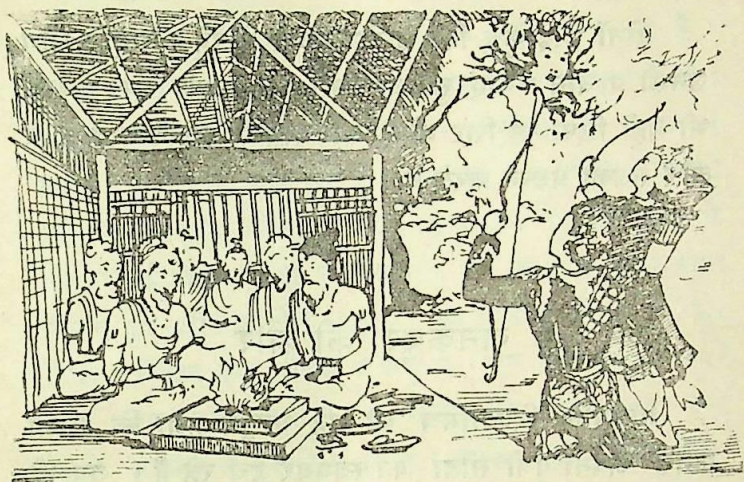
दोनों भाई उनके यज्ञ के रक्षक बन गए

सुनि मारीच निसाचर कोही ।
लेइ सहाय धावा मुनि-द्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा ।
सत जोजन गा सागर पारा ॥

इसके बाद राम ने सुबाहु को अग्निबाण मारा । वह तुरन्त मर गया । फिर लक्ष्मण ने देखते-ही-देखते दूसरे राक्षसों को समाप्त कर डाला । इस प्रकार इन दोनों भाइयों ने राक्षसों का नाश करके ब्राह्मणों को निर्भय कर दिया । देवता और मुनि सब उनकी स्तुति करने लगे । महामुनि विश्वामित्र के हर्ष का तो कहना ही क्या था ! मारीच और सुबाहु ये दोनों ही उनके यज्ञ में विघ्न डाला करते थे और उनको सताया करते थे ।

उन सबका अब नाश हो गया था। वे हर्ष से फूले न समाते तो क्या करते !

दोनों भाई कुछ दिन उनके आश्रम में रहे। ब्राह्मण लोग उनको प्राचीन कथाएं सुनाया करते थे। यद्यपि राम से कुछ भी नहीं छिपा था फिर भी वे बड़े चाव से इनकी बातें सुनते और सबको प्रसन्न करते थे।

: ७ :

जनकपुरी की ओर

महामुनि विश्वामित्र को यह मालूम हुआ कि राजा जनक अपनी पुत्री सीता का स्वयंवर रच रहे हैं। यह भी पता चला कि जो राजा शिव-धनुष को तोड़ देगा, उसी से सीता का विवाह होगा। इसलिए उन्होंने राम-लक्ष्मण को जनकपुरी ले जाने का निश्चय किया। धनुष-यज्ञ की यह कथा सुनकर राम भी बहुत प्रसन्न हुए और मुनिराज के साथ चल दिये। कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक आश्रम देखा। वहां पर न कोई पक्षी था, न कोई मृग। केवल एक शिला पड़ी हुई थी।

आस्रम एक दीख मग माहीं।
खग मृग जीव जंतु तहं नाहीं॥
पूछा मुनिहिं सिला प्रभु देखी।
सकल कथा मुनि कही बिसेखी॥

राम पूछने लगे, "गुरुदेव, यह क्या है ?" तब विश्वामित्र

ने इस शिला के बारे में जो कथा थी वह राम को कह-सुनाई।

"प्राचीन काल में गौतम नाम के एक ऋषि हुए हैं। उनकी पत्नी का नाम अहल्या था। अहल्या परम सुन्दरी थी। विवाह से पहले ब्रह्मा उनको महाराज गौतम के आश्रम में धरोहर के रूप में छोड़ गए थे। एक वर्ष बाद गौतम ने उनको ज्यों-का-त्यों ब्रह्मा को लौटा दिया। एक क्षण से लिए भी उनके मन में कोई विकार पैदा नहीं हुआ। यह जानकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अहल्या का विवाह गौतम से कर दिया। लेकिन इन्द्र गौतम के शत्रु थे। एक दिन उन्होंने अपने मित्र चन्द्रमा की सहायता से गौतम को धोखा देकर उन्हें अपने आश्रम से दूर भेज दिया। उसके बाद उन्होंने गौतम का रूप धारण करके अहल्या के साथ खोटा व्यवहार कर दिया। गौतम जब आश्रम में लौटे तो उन्हें इस दुर्घटना का पता लगा। उन्होंने इन्द्र को शाप दिया और साथ ही अहल्या को भी कि वह पत्थर हो जाय। अहल्या तुरन्त पत्थर हो गई। पत्थर होने से पूर्व अहल्या ने गौतम से क्षमा-प्रार्थना की। बताया कि वह निर्दोष है। दोष तो इन्द्र का है। गौतम सबकुछ समझते थे। फिर भी उन्होंने अपना शाप वापस नहीं लिया। हां, यह कहा कि जब त्रेतायुग में राम इस मार्ग से जनकपुरी जायंगे उस समय उनके चरणों का स्पर्श पाकर उसका उद्धार होगा।"

इतना कहकर विश्वामित्र बोले, "वही अहल्या इस शिला के रूप में पड़ी हुई है। हे राम, अब आप इसका उद्धार कीजिये। यह आपके चरणों की धूल चाहती है।"

राम ने यह कथा सुनी तो उन्होंने तुरन्त उस शिला को
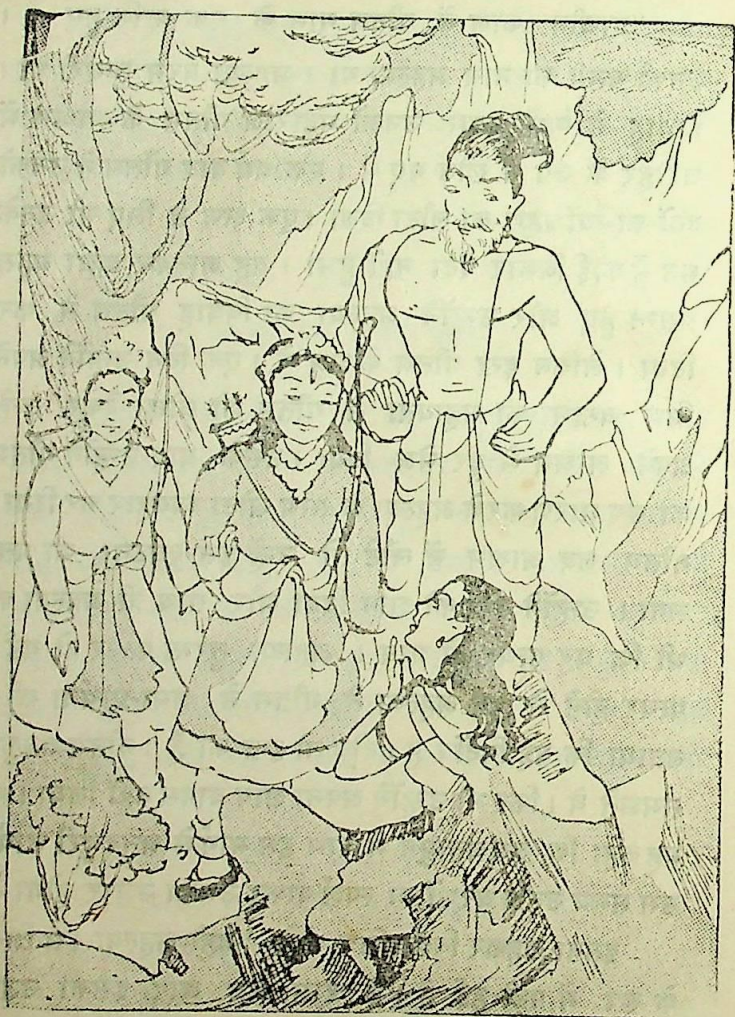
राम के चरणों का स्पर्श होते ही अहल्या असली रूप में आ गई

अपने चरणों से छू दिया। उसी क्षण अहल्या ने अपना असली रूप धारण कर लिया और जब उसने मनुष्यों को सुख देनेवाले राम को अपने सामने देखा तो वह हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। प्रेम के कारण उसका हृदय गद्गद् और सारा शरीर पुलकायमान हो रहा था। उसके मुख से कोई बात नहीं निकल रही थी। उसने अपने-आपको बहुत ही भाग्य-वती समझा। वह राम के चरणों पर गिर पड़ी और उसकी दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। उसने प्रभु को पहचान लिया और अति निर्मल वाणी में उनकी स्तुति करने लगी।

परसत पद पावन सोक-नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन-सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ वचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही ॥
धीरज मन कीन्हा प्रभु कहं चीन्हा रघुपति-कृपा भगति पाई।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥

वह बोली, "महाराज गौतम ने अच्छा ही किया जो मुझे शाप दिया। उनके शाप के कारण ही संसार के बंधनों को काटने-वाले राम का दर्शन मुझे मिला।"

बार-बार इस प्रकार कहते हुए वह राम के चरण छूने लगी। उसने जो वरदान मांगा, वही राम ने दिया। यों सब प्रकार से प्रसन्न होकर वह अपने पति के पास चली गई।

वहां से चलकर राम गंगा के तट पर पहुंचे। महामुनि विश्वा-मित्र ने यहांपर उनको गंगा के पृथ्वी पर आने की कथा सुनाई।

यह कथा सुनकर राम-लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ गंगा में स्नान किया और ब्राह्मणों को तरह-तरह के दान दिये। इसके बाद वे खुशी-खुशी आगे बढ़े और बहुत ही शीघ्र जनकपुरी के समीप जा पहुँचे।

चले राम लछिमन मुनि संगा।
गये जहां जग पावनि गंगा॥
गाधि-सूनु सब कथा सुनाई।
जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥
तब प्रभु रिसिन्ह समेत नहाये।
विविध दान महिदेवन्हि पाये॥
हरषि चले मुनिवृन्द-सहाया।
बेगि बिदेह नगर निअराया॥

वहां पहुंचकर उन्होंने नगर के बाहर एक सुरम्य स्थान पर निवास किया।

: ८ :

नगरी में स्वागत

विश्वामित्र के आने का समाचार पाकर राजा जनक तुरंत उनसे मिलने के लिए चले। उन्होंने अपने साथ मंत्री, बहुत-से योद्धा, श्रेष्ठ ब्राह्मणों और गुरु को लिया और उनके ठहरने के स्थान पर पहुँचे। राजा ने सबके साथ उनको प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर विश्वामित्र ने बड़े आदर के साथ उनको अपने पास बैठाया। इसी समय राम-लक्ष्मण भी वहां आ गये। वे

वाटिका देखने गये हुए थे। उन दोनों भाइयों को देखते ही राजा जनक के मन में कौतूहल पैदा हुआ और वे उनके रूप से बड़े प्रभावित हुए। उनको इतना सुख हुआ कि नेत्रों में जल भर आया। गद्गद् वाणी से वह मुनि से पूछने लगे, "हे नाथ, ये दोनों सुन्दर बालक किसके हैं ? किसी मुनि के हैं या किसी राजवंश के ?"

राजा की ऐसी अवस्था देखकर मुनि विश्वामित्र ने दोनों भाइयों का परिचय देते हुए कहा, "ये रघुकुल के महाराज दशरथ के पुत्र हैं। मेरे भले के लिए राजा ने इनको भेजा। इन्होंने राक्षसों को हराकर मेरे यज्ञ की रक्षा की है।"

यह परिचय पाकर राजा की प्रीति और भी बढ़ गई। उन्होंने उन सबको ले जाकर एक सुन्दर महल में ठहराया। सब भांति उनके भोजन आदि का प्रबन्ध किया। उसके बाद वह मुनि की आज्ञा लेकर अपने घर चले गए और लक्ष्मण के मन की बात जानकर राम ने भी मुनि की आज्ञा लेकर घूमने के लिए नगर की ओर प्रस्थान किया।

उनको देखकर नगर के सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। वे उनके सुन्दर वस्त्र, कमर में बंधे तरकस, हाथों में सुन्दर धनुष-बाण, सांवला और गोरा रंग, इन सबको देखते और मन-ही-मन उनकी सराहना करते। वे अपने सब काम छोड़कर उनको देखने के लिए ऐसे दौड़े, जैसे लोग खजाना लूटने के लिए दौड़ते हैं। वे तरह-तरह से उनके रूप की प्रशंसा करने लगे। नगर की युवतियां एक-दूसरे से बातें करने लगीं। एक ने कहा कि यदि सीता के लिए कोई वर है तो यह राम ही हैं।
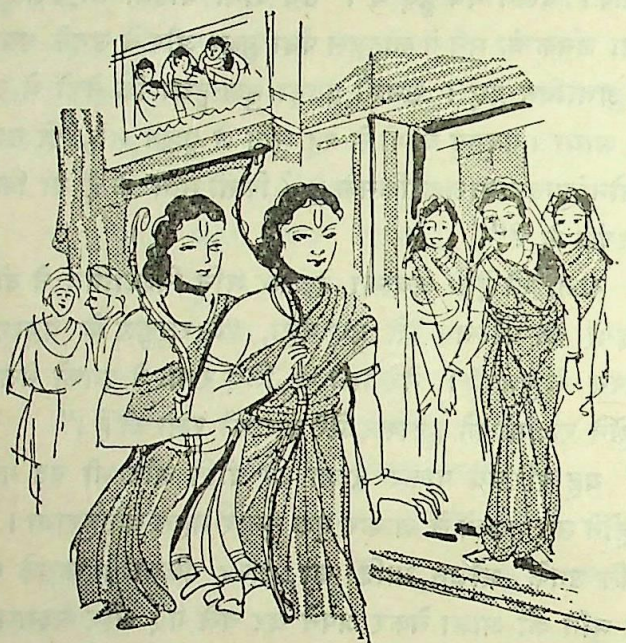
जनकपुरी में नरनारी अपना-अपना काम छोड़कर उन्हें देखने दौड़ पड़े

देखि रामछबि कोउ एक कहई।
जोगु जानकिहि यह बरु अहई।।
जौं सखि इन्हहि देखि नरनाहू।
पन परिहरि हठि करइ बिबाहू।।

यदि राजा इनको देख लेंगे तो अपना प्रण छोड़कर जानकी का विवाह इनके साथ ही कर देंगे। दूसरी सखी बोली, राजा सब कुछ जानते हैं। वह अपना हठ नहीं छोड़ेंगे। तीसरी बोली, "विधाता बहुत भला है। वह सबको उचित फल देता

है। हे सखि ! जानकीजी को यही वर मिलेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं।"

कोउ कह जौं भल अहइ विधाता।
सब कहं सुनिअ उचित फलदाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू।
नाहिन आलि इहां सन्देहू ॥

"अगर ऐसा हो जाय तो हम सब लोग कृतार्थ हो जायं। सखी, यदि यह विवाह न हुआ तो हमको इनके दर्शन दुर्लभ हो जायंगे।" दूसरी कहने लगी, "सखी, तुमने सच बात कही है। यह विवाह तो सबका मनचाहा समझना चाहिए। सबका इसमें हित है।" किसी ने कहा, "शिव का धनुष बड़ा कठोर है और ये श्यामल शरीरवाले बड़े ही सुकुमार हैं। ये कैसे इस धनुष को तोड़ेंगे ?"

बोली अपर कहेहु सखि नीका।
एहि बिआह अतिहित सबही का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा।
ए स्यामल मृदुगात किसोरा ॥

इस पर एक और सखी बोली, "तुम नहीं जानतीं, यह देखने में ही छोटे लगते हैं, वैसे इनकी शक्ति बहुत अधिक है। यह अवश्य धनुष को तोड़ डालेंगे। विधाता ने सोच-समझकर ही सीता के योग्य इस सांवले रंगवाले दूल्हे की रचना की है।"

यह सुनकर सब स्त्रियां बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीं "भगवान् करे ऐसा ही हो !"

जेहि बिरंचि रचि सीय संवारी।
तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी।।
तासु बचन सूनि सब हरषानीं।
ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं।।

इस प्रकार घूमते हुए राम और लक्ष्मण वहां भी पहुंचे जहां सीता-स्वयंवर होनेवाला था। वह बहुत ही लम्बा-चौड़ा और सुन्दर स्थान था। सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाया गया था। नगर के बालक बड़े स्नेह और आदर के साथ रामचंद्रजी को उसकी रचना दिखाने लगे। तभी रात का अंधकार छाने लगा और दोनों भाई गुरु के पास लौट आये। रात्रि को सबने विश्राम किया और दूसरे दिन नित्य कर्म से अवकाश पाकर दोनों भाई फूल लेने के लिए जनकपुर की वाटिका में पहुंचे।

: ९ :

प्रथम दर्शन

वाटिका बहुत सुन्दर थी। उसमें नाना प्रकार के फूल खिले हुए थे। वृक्षों पर नये-नये पत्ते और फल लगे हुए थे। पपीहा, कोयल, चकोर, आदि मीठे स्वर में गा रहे थे। मोर नाच रहे थे। ऐसी सुन्दर वाटिका को देखकर दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए। उसी समय माता की आज्ञा से, गौरी-पूजन करने के लिए, सीताजी भी वहां आ गईं। उनके साथ बहुत-सी चतुर सखियां थीं, जो मधुर स्वर में गीत गा रही थीं।

तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
संग सखी सब सुभग सयानीं।
गावहिं गीत मनोहर बानीं॥

उनमें से एक सखी फुलवारी देखने के लिए चली आई और उसने राम-लक्ष्मण को फूल तोड़ते हुए देख लिया। वह तुरन्त सीताजी के पास गई। कहने लगी, "बाग देखने के लिए दो राजकुमार आये हैं। वे सांवरे और गोरे रंग के हैं। उनकी सुन्दरता का वर्णन मैं कैसे करूं! जीभ के आंखें नहीं हैं और आंखों के जीभ नहीं है। यानी जो वाणी वर्णन कर सकती है वह तो देख नहीं सकती और जो नेत्र देख सकते हैं वे बोल नहीं सकते।"

देखन बागु कुँअर दुई आए।
बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

यह सुनकर सीताजी के मन में उनको देखने की इच्छा उत्पन्न हुई और वे सब उधर ही चल पड़ीं। राम ने भी उनको देख लिया और लक्ष्मण से कहने लगे, "यह राजा जनक की पुत्री हैं। इन्हींके लिए धनुष-यज्ञ हो रहा है। यह अपनी सखियों के साथ गौरी-पूजा के लिए आई हैं। इनके आने से फुलवारी में प्रकाश फैल रहा है। रघुवंशियों का यह सहज स्वभाव है कि वे कभी बुरे मार्ग पर पैर नहीं रखते। मुझे अपने पर पूरा भरोसा है। मैंने स्वप्न में भी किसी पराई स्त्री को नहीं देखा।

लेकिन इस समय न जाने क्यों मेरा मन चंचल हो रहा है। मेरा दाहिना अंग फड़क रहा है। विधाता ही इसका कारण जानते हैं।

राम जब लक्ष्मण से इस प्रकार बातें कर रहे थे तब सीताजी भी उनकी ओर देख रही थीं। राम को देखकर उनके नेत्र स्थिर हो गए। पलकें गिराना भूल गईं। अधिक स्नेह के कारण उनका शरीर बेकाबू हो गया। ऐसा लगा मानों शरद् ऋतु के चन्द्रमा को देखकर चकोरी बेसुध हो रही हो।
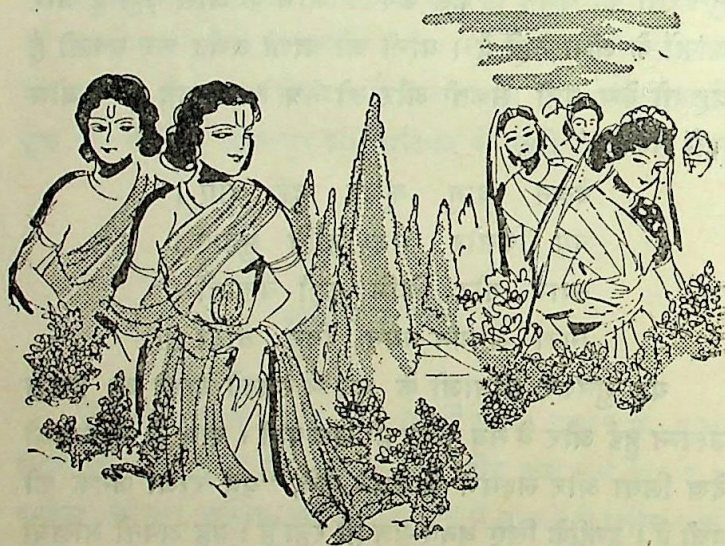
श्रीराम को देखकर सीताजी पलकें गिराना भूल गईं

थके नयन रघुपति छबि देखे।
पलकन्हिहूं परिहरीं निमेषे॥

अधिक सनेह देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥

इसी समय दोनों भाई कुंजसे ऐसे प्रकट हुए मानो दो चन्द्रमा बादलों के परदे को हटाकर बाहर निकल आए हों।

लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ॥

उस समय के उनके रूप का वर्णन कैसे किया जा सकता है। सीताजी ने अपने नेत्र मूंद लिये और पिता के प्रण की बात याद करके उनका मन बहुत दुखी हुआ। सखियों ने जब सीताजी को इस प्रकार बेबस देखा तो वे भयभीत हो उठीं और कहने लगीं, "अब गौरी की पूजा करने के लिए चलना चाहिए।" सीताजी बार-बार राम की ओर देखती हुई गौरी-पूजा के लिए चली गईं और राम भी लक्ष्मण के साथ गुरु के पास लौट आए।

: १० :

स्वयंवर में

धनुष यज्ञ की तैयारी आरम्भ हो चुकी थी। यज्ञ में भाग लेने के लिए आये हुए देश-देश के राजा मंडल में आने लगे। महाराजा जनक ने विश्वामित्र सहित राम-लक्ष्मण को भी स्वयंवर में आने का निमन्त्रण भेजा। तब सब मुनियों के साथ रामचन्द्र-जी धनुष-यज्ञ देखने चले। उनके आने का समाचार पाकर सब नगरनिवासी काम-धाम छोड़कर बाहर आ गए। राजा-महा-राजाओं ने भी रामचन्द्र को देखा। उस समय जिसके मन में

जैसी भावना थी उन्होंने उनकी मूर्त्ति को वैसे ही रूप में देखा। जो वीर लोग थे उनको लगा जैसे स्वयं वीर-रस शरीर धारण करके आ गया हो। दुष्ट राजा उनको देखकर डर गये। जो राक्षस छल करके राजाओं का वेश धारण किये हुए थे उन्हें वह काल के समान दिखाई दिए। पुरवासियों ने दोनों को मनुष्यों में भूषण के रूप में देखा और और अपने नेत्रों को सुख देनेवाला माना।

जिन्हकें रहीं भावना जैसी।
प्रभु मूरत तिन्ह देखी तैसी॥
देखिहिं रूप महा रनधीरा।
मनहुँ बीर रस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी।
मनहुं भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा।
तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई।
नरभूषण लोचन सुखदाई॥

स्त्रियों ने भी प्रसन्न होकर उन्हें अपनी-अपनी रुचि के अनुसार देखा। विद्वानों को वे विराट रूप में दिखाई दिये। जनक के संबंधियों को ऐसे लगा जैसे उनके प्रिय कुटुम्बी हैं। जनक की रानी उन्हें बच्चे के समान देखने लगीं। सीताजी जिस भाव से रामचन्द्रजी को देख रही थीं, उस स्नेह और सुख का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

इस अवसर पर कुछ राजाओं के मन में विचार उठा कि

धनुष को तोड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। परन्तु कुछ राजाओं ने धनुष उठाने का निश्चय किया। रावण भी वहां आया हुआ था। उसने धनुष उठाने का बहुत प्रयत्न किया, लेकिन वह उसे हिला तक न सका। और भी बहुत-से राजा बड़े जोश के साथ आगे बढ़े, लेकिन पूरा बल लगाने पर भी वह धनुष उनसे नहीं उठा। जब वे एक-एक करके जोर लगा चुके तो उन्होंने एक-साथ मिलकर उसे उठाने का प्रयत्न किया। फिर भी वे सफल नहीं हो सके, तो लज्जित होकर अपने-अपने स्थान पर वापस आ कर बैठे। यह देखकर राजा जनक अकुला उठे और क्रोध में भरकर बोले, "कोई भी राजा शिव का धनुष नहीं तोड़ सका। तोड़ना तो दूर, कोई उसे तिलभर उठा भी न सका। वीरता पर अभिमान करनेवाले लोग नाराज न हों, मैंने समझ लिया कि यह धरती वीरों से खाली हो गई है, सो आप लोग अपने-अपने घर जाइये। ब्रह्मा ने सीता के भाग्य में विवाह लिखा ही नहीं है।"

अब जनि कोउ माखै भट मानी।
बीर विहीन मही मैं जानी।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू।
लिखा न बिधि वैदेहि बिआहू।।

महाराज जनक के ये वचन सुनकर सब उपस्थित नर-नारी बहुत दुखी हुए। परन्तु लक्ष्मण क्रोध में भर उठे। राजा जनक की बातें उनके हृदय में बाण के समान लगीं और रामचन्द्रजी की ओर देखकर कहने लगे, "जिस समाज में रघुवंशियों में से कोई भी होता है उस समाज में किसी को भी ऐसे वचन कहने

का अधिकार नहीं। हे सूर्यकुल के सूर्य, मैं अभिमान से नहीं कहता, स्वभाव से ही कहता हूँ कि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं इस सारी पृथ्वी को गेंद की तरह उठा सकता हूं और कच्चे घड़े की तरह फोड़ सकता हूं। यह बेचारा धनुष तो क्या चीज है, मैं सुमेरु पर्वत को मूली की तरह तोड़ सकता हूं। आप आज्ञा दें तो मैं इसे कमल की डंडी की तरह चढ़ाकर सौ योजन तक दौड़ता हुआ चला जाऊं।"

सुनहु भानुकुल पंकज भानू।
कहौं सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासनि पावौं।
कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी।
सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना।
को बापुरो पिनाक पुराना॥
नाथ जानि अस आयसु होऊ।
कौतुक करौ बिलोकिअ सोऊ॥
कमलनाल जिमि चाप चढ़ावौं।
जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

लक्ष्मण के ये क्रोध-भरे वचन सुनकर पृथ्वी डगमगा उठी। सब राजा लोग डर गए। महाराजा जनक भी सकुचा गए। लेकिन सीताजी, रामचंद्रजी, मुनि आदि सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। श्रीराम ने उनको इशारे से चुप किया और अपने पास बैठा लिया। तब विश्वामित्र अत्यन्त प्रेम में भरकर बोले,

"हे राम, उठो और शिवजी के धनुष को तोड़कर महाराज जनक का दुःख दूर करो।"

ये वचन सुनकर रामचन्द्रजी उठ खड़े हुए। उन्होंने सब से पहले गुरु के चरणों में सिर नवाया, फिर मुनियों से आज्ञा लेकर इस प्रकार आगे बढ़े कि जवान सिंह भी लजा जाय। उनको देखकर सबको बहुत सुख हुआ। सीताजी की माता तो प्रेम में भरकर रोने लगीं। कहने लगीं, "जिस धनुष को रावण, बाणासुर छू तक नहीं सके, उस धनुष को यह सुकुमार कैसे तोड़ेंगे। हंस का बच्चा कहीं मंदराचल पहाड़ उठा सकता है! गुरुजी ने इन्हें धनुष तोड़ने की आज्ञा देकर अच्छा नहीं किया।"

यह सुनकर एक चतुर सखी बड़े प्रेम से बोली, "हे रानी, जो तेजवान होते हैं, वे देखने में छोटे भले ही लगें, परन्तु छोटे होते नहीं। देखो, मुनि अगस्त्य घड़े से पैदा हुए थे, लेकिन कितने बड़े समुद्र को उन्होंने सुखा दिया था। सूर्यदेव देखने में कितने छोटे लगते हैं, लेकिन तीनों लोकों का अंधकार दूर करते हैं।"

सखी के ये वचन सुनकर रानी की उदासी मिट गई, प्रेम बढ़ गया। पर उसी समय सीताजी भी भयभीत होकर देवताओं से विनती करने लगीं। उनकी आंखों में आंसू भर आए। शरीर में रोमांच हो आया। मन-ही-मन कहने लगीं, 'पिताजी ने कैसा हठ ठान लिया है। वह अपना लाभ-हानि कुछ भी तो नहीं समझते। हे महादेव, अब तो आपका ही आसरा है।'

फिर अपनी बढ़ती हुई व्याकुलता से वह स्वयं ही खीज गईं और धीरज धरकर मन-ही-मन कहने लगीं, 'यदि तन-मन-

वचन से मेरा प्रण सच्चा है और श्रीराम के चरणों में मेरा सच्चा अनुराग है तो घट-घटवासी भगवान मुझे अवश्य ही उनकी दासी बनायगा।'

रामचंद्रजी ने सीताजी को अत्यन्त व्याकुल देखा। वे समझ गये कि अब धनुष तोड़ने में देरी करने से लाभ नहीं, हानि होने की संभावना है।

का बरषा सब कृष सुखानें।
समय चुकें पुनि का पछितानें॥

राम सोचने लगे कि सारी खेती के सूख जाने पर यदि पानी बरसा तो उससे लाभ ही क्या? समय के बीत जाने पर पछतावा करने से कोई लाभ नहीं होता।

: ११ :

धनुष-भंग

इसी समय रामचन्द्रजी धनुष के समीप पहुंचे। सब नर-नारी देवताओं की याद करने लगे। राम ने उनकी ओर देखा तो सब उन्हें चित्र में लिखे हुए-से जान पड़े। सीताजी बहुत व्याकुल हो रही थीं। उनका प्रेम देखकर राम और भी पुलकित हो उठे और मन-ही-मन गुरु को प्रणाम करके उन्होंने फुर्ती से धनुष को उठा लिया। धनुष बिजली की तरह चमका और फिर आकाश में मंडलाकार हो गया। उसे उठाते, चढ़ाते और जोर-जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं देखा। अर्थात् रामचन्द्रजी ने धनुष कब उठाया, चढ़ाया और खींचा इसका किसीको कुछ

पता नहीं लगा। सबने उनको खड़े हुए ही देखा। उसी क्षण रामचन्द्रजी ने धनुष को बीच में से तोड़ डाला। उसकी भयंकर कठोर ध्वनि से सारा लोक भर उठा।
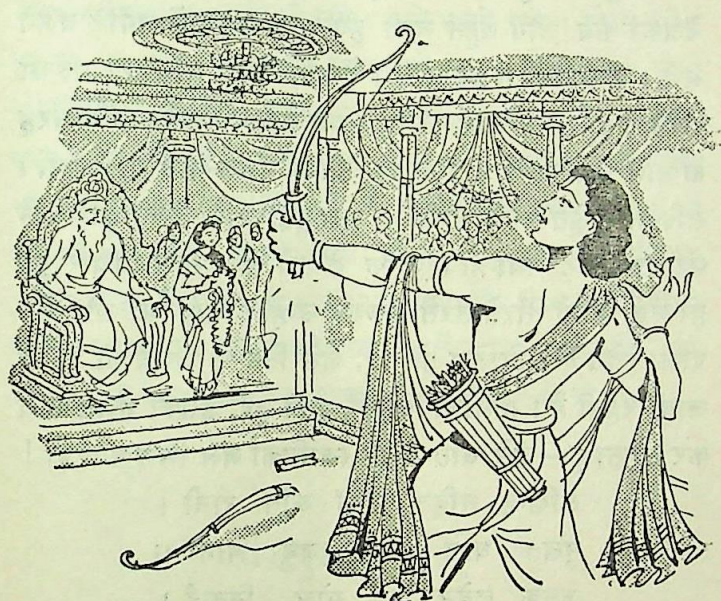
क्षण भर में प्रभु ने धनुष के दो टुकड़े कर डाले

गुरहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा।
अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयेऊ।
पुनि नभ धनु मंडल सम भयेऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें।

काहु न लखा देखु सबु ठाढ़ें ॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा ।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

प्रभु ने धनुष के दोनों टुकड़े पृथ्वी पर डाल दिये । यह देखकर सब लोग बहुत सुखी हुए । आकाश में नगाड़े बजने लगे । अप्सराएं नाचने लगीं । देवता, सिद्ध, मुनि सब प्रशंसा करने लगे । भाट और सूत लोग यश बखानने लगे । तरह-तरह के बाजे बज उठे । जहां-तहां युवतियां मंगल-गान गाने लगीं । सखियों सहित रानी बहुत ही खुश हुईं, मानो सूखते हुए धान पर पानी पड़ गया हो । जनक के भी सब सोच-विचार दूर हो गए, मानो तैरते-तैरते थककर उन्होंने थाह पा ली हो । राजा लोग ऐसे निस्तेज हो गए, जैसे दिन में दीपक की शोभा जाती रहती है । सीताजी कितनी सुखी हुईं, इसका वर्णन कौन कर सकता है—जैसे चातकी को स्वातिका जल मिल गया हो !

सखिन्ह सहित हरषीं अति रानी ।
सूखत धान परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई ।
तैरत थके थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे ।
जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भांति ।
जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥

इसी समय गुरु शतानन्द की आज्ञा पाकर सीताजी रामचन्द्रजी के पास चलीं । वह बहुत सुन्दर मालूम हो रही थीं । उनके

शरीर में संकोच था, पर मन में उत्साह हिलोरें मारता था। पास जाकर और श्री रामचन्द्रजी की शोभा देखकर वह चित्र-लिखित-सी रह गईं। जब उनकी सखी ने उन्हें समझाया तब उन्होंने बड़े संकोच से रामचन्द्रजी के गले में माला पहना दी। यह देखकर देवता फूल बरसाने लगे। बाजे बजने लगे। राजा लोग सकुचा गए और दुष्ट लोग उदास हो गए। सीता और राम की जोड़ी ऐसी शोभा देने लगी मानो सुन्दरता और श्रृंगार इकट्ठे हो गये हों। दूसरी ओर राजा लोग पराजय की खोल और ईर्ष्या के कारण सीताजी को छीनने और राम-लक्ष्मण को पकड़ने का षड्यंत्र करने लगे। लेकिन वह सब ऐसा ही था जैसे खरगोश सिंह का भाग छीनना चाहे और शिव का विरोधी चाहे कि उसे सब प्रकार की सम्पत्ति मिल जाय। इसलिए जो भले राजा थे उन्होंने दुष्ट राजाओं को चेतावनी दी।

: १२ :

परशुराम-संवाद

इसी समय शिवजी के धनुष टूटने का समाचार सुनकर परशुराम वहां आ पहुंचे। उन्हें देखकर राजा लोग भयभीत हो उठे और इधर-उधर छिप गये। क्रोध के कारण परशुराम की आंखें और मुख सब लाल हो रहे थे। वह ऐसे लग रहे थे मानो वीर-रस ही रूप धारणकर वहां आ गया हो। सब लोग अपने पिता का नाम बताकर उन्हें प्रणाम करने लगे। जनक ने भी उन्हें प्रणाम किया और सीताजी को बुलाकर उन्हें प्रणाम

कराया। परशुराम ने सीता को आशीर्वाद दिया। फिर विश्वामित्र आकर मिले और उन्होंने दोनों भाइयों को भी उनके चरणों में शीश रखने को कहा। उन्हें देखकर परशुराम चकित रह गये, विशेषकर रामचन्द्रजी के अपार रूप को देखकर। उन्होंने दोनों को आशीर्वाद दिया और पूछा, "यह भीड़ क्यों इकट्ठी हो रही है ?"

तभी उनकी दृष्टि धनुष के टुकड़ों पर पड़ी। वह तमतमा उठे, "अरे मूर्ख, बता यह धनुष किसने तोड़ा है ? मैं अभी पृथ्वी को उलट दूंगा।" उनका यह क्रोध देखकर सब भय से कांप उठे, लेकिन रामचन्द्रजी उसी तरह शांत रहे। बोले, "हे नाथ, शिव का धनुष तोड़नेवाला कोई आपका ही दास होगा। आपकी क्या आज्ञा है ? कहिये।" मुनि और भी क्रोधित होकर बोले, "सेवक वह होता है, जो सेवा करे। शत्रु का काम करने पर लड़ाई होती है। हे राम, जिसने शिव का धनुष तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है। वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाय, नहीं तो सब राजा मारे जायंगे।"

नाथ संभु धनु भंजनिहारा।
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही।
सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करे सेवकाई।
अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहुं राम जेहि सिवधनु तोरा।
सहसबहु सम सो रिपु मोरा॥

मुनि के ये वचन सुनकर लक्ष्मण मुस्कराने लगे और हँस-कर बोले, "हे मुनिराज, लड़कपन में मैंने ऐसे बहुत-से धनुष तोड़े हैं। किन्तु आपने कभी ऐसा क्रोध नहीं किया। इस धनुष पर ऐसी ममता क्यों है? मेरी समझ में तो सब धनुष एक-से ही हैं। पुराने धनुष को तोड़ने से क्या आता-जाता है। श्रीराम तो इसे नया समझ बैठे थे। यह तो छूते ही टूट गया।"
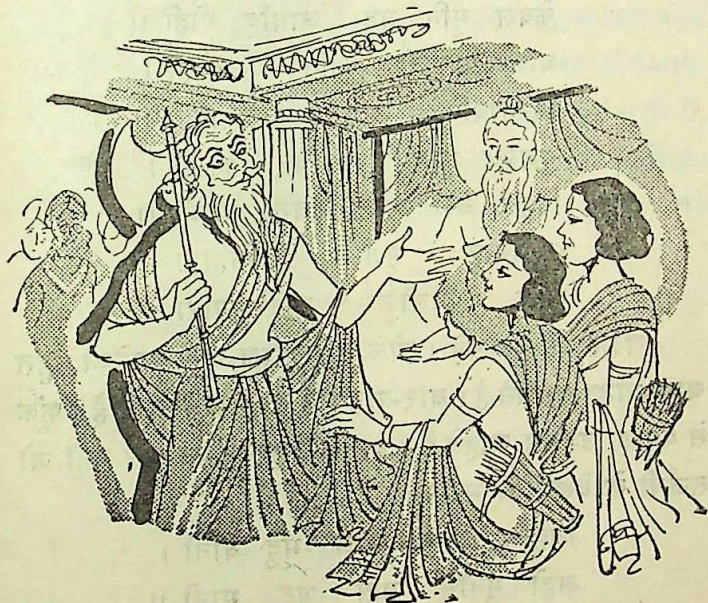
परशुराम बोले, "जिसने शिव का धनुष तोड़ा, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है।"

लक्ष्मण के इस प्रकार बोलने पर परशुराम ने अपना फरसा संभाल लिया और बोले, "अरे दुष्ट, तू मेरे स्वभाव को नहीं जानता, लेकिन मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता। तू मुझे

निरा मुनि न समझ। मैं बाल ब्रह्मचारी अत्यन्त क्रोधी हूं। मैं संसार भर में क्षत्रियों का शत्रु जाना जाता हूं। मैंने अपनी भुजाओं के बल से अनेक बार पृथ्वी को जीतकर ब्राह्मणों को दान दे डाला। अरे राजकुमार, सहस्रबाहु की भुजाओं को काटने वाला मेरा यह फरसा देख।"

बालक बोलि बधऊं नहिं तोही।
केवल मुनि जड़ जानहिं मोहीं।।
बाल-ब्रह्मचारी अति कोही।
बिस्वबिदित छत्रिय कुल द्रोही।।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही।
बिपुल बार महि देवन्ह दीन्ही।।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा।
परसु बिलोकु महीपकुमारा।।

लक्ष्मणजी हँस पड़े। बोले, "मुनिराज, आप अपनेको बहुत बड़ा योद्धा समझते हैं। बार-बार मुझे कुल्हाड़ा दिखाते हैं। फूंक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं। यह कोई कुमढ़े का फूल नहीं जो तर्जनी के देखते ही मर जाय।"

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी।
अहो मुनीसु महा भट मानी।।
पुनि पुनि मोहि दिखाव कुठारू।
चहत उड़ावन फूंकि पहारू।।
इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं।
जे तरजनी देखि मरि जाहीं।।

इस प्रकार परशुराम और लक्ष्मण में बहस छिड़ गई।

परशुरामजी क्रोध में भरकर अपनी वीरता का बखान करने लगे और लक्ष्मण बार-बार मुस्कराकर चुटकियां लेने लगे, यहांतक कि एक बार परशुराम फरसा उठाकर लक्ष्मण को मारने के लिए लपके। विश्वामित्र ने उनको बहुत समझाया, लेकिन उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। अन्त में राम ने इशारे से लक्ष्मण को रोका और परशुराम की क्रोधरूपी अग्नि को बढ़ते हुए देखकर जल के समान शीतल वचन बोले, "हे नाथ, बालक पर क्रोध न कीजिये। यह बेसमझ आपका प्रभाव नहीं जानता और आपकी बराबरी करता है। बालक तो चपलता किया ही करते हैं, लेकिन गुरुजन उस चपलता को देखकर आनन्द से भर उठते हैं। आप तो समदर्शी, धीर और ज्ञानी हैं। इसे छोटा बच्चा और सेवक जानकर कृपा कीजिये।"

नाथ करहु बालक पर छोहू।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना।
तौ कि बराबरि करत अयाना॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।
गुर पितु मातु मोद मन भरहीं॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी।
तुम्ह समसील धीर मुनि ग्यानी॥

रामचन्द्रजी के ये वचन सुनकर परशुराम कुछ शान्त हुए, परन्तु इसी समय लक्ष्मण कुछ कहकर फिर मुस्कराने लगे। परशुराम फिर क्रोध में भर उठे। कहने लगे, "राम, तुम्हारा भाई बड़ा दुष्ट है। यह शरीर से गोरा है, पर हृदय से काला

है। यह दुधमुंहा नहीं है, जहर से भरा हुआ है।"

लक्ष्मण फिर हँस पड़े। बोले, "हे मुनि, क्रोध पाप का मूल है। इसके वश में होकर मनुष्य बुरे काम कर बैठता है। मैं तो आप का दास हूं। खड़े-खड़े आपके पैर दुखने लगे होंगे, बैठ जाइये। यदि यह धनुष आपको बहुत प्यारा है, तो कहिये किसी कारीगर को बुलाकर जुड़वा दिया जाय।"

इस प्रकार लक्ष्मण की बातें सुनकर सब स्त्री-पुरुष थरथर कांपने लगे। परशुराम का क्रोध बढ़ने लगा, पर उनका बल घटने लगा। तब रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को आंखों-आंखों में ही आगे बोलने से रोका और स्वयं कहने लगे, "हे मुनीश्वर, आप क्रोध छोड़ दीजिये। मैं तो आपका दास हूं। बताइये, मैं आपको कैसे प्रसन्न करूं। लक्ष्मण तो बालक है। उसने आपको पहचाना नहीं। आपके हथियार देखकर उसने आपको वीर समझा और उसे क्रोध आ गया। अगर आप मुनि की तरह आते तो वह आपके चरणों की धूल अपने सिर पर लेता। अब आप उसे क्षमा कर दीजिये। मेरी आपकी क्या बराबरी ! कहां चरण और कहां मस्तक ! मेरा छोटा-सा नाम राम है और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा नाम परशुराम! हमारा तो एक ही गहना है, धनुष; परन्तु आपके तो नौ परम पवित्र गुण हैं। हम तो सब प्रकार से आपसे हारे हुए हैं। हे विप्र, हमारा अपराध क्षमा कीजिये।"

हमहिं तुम्हहिं सरिबरि कसि नाथा।
कहहु न कहां चरन कहं माथा॥

राम मात्र लघु नाम हमारा।
परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एक गुन धनुषु हमारे।
नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे।
छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

इस प्रकार रामचन्द्रजी के बार-बार मुनि और विप्रवर कहने पर परशुराम क्रोध की हँसी हँसकर बोले, "तू अपने भाई के समान ही टेढ़ा है। तू मुझे निरा ब्राह्मण समझता है। मेरा प्रभाव तुझे मालूम नहीं। धनुष तोड़ डाला, इससे तेरा घमण्ड बहुत बढ़ गया है, मानो तूने सारे संसार को जीत लिया है।"

रामचन्द्रजी बोले, "सोच-समझकर बात कीजिये। आपका क्रोध बहुत बड़ा है और मेरी भूल बहुत छोटी है। धनुष पुराना था, छूते ही टूट गया, इसके लिए मैं क्या अभिमान करूं। हे भृगुनाथ, यदि हम सचमुच आपको ब्राह्मण मानकर निरादर करते हैं तो फिर संसार में ऐसा कौन योद्धा है, जिससे हम डरें। कोई हो, यदि वह हमें रण में ललकारेगा तो हम उससे युद्ध करेंगे। जो क्षत्रिय युद्ध से डरता है, वह अपने कुल पर कलंक लगाता है। मैं अपने कुल की प्रशंसा नहीं करता, लेकिन रघुवंशी रण में काल से भी नहीं डरते। यह तो ब्राह्मण-वंश की महिमा है, जो मैं आपसे डरता हूँ। उसे और किसी का डर नहीं रहता।"

श्री रघुनाथजी के ऐसे वचन सुनकर परशुराम की बुद्धि के कपाट खुल गये। बोले, "हे राम, लक्ष्मीपति विष्णु का यह

धनुष लीजिये और इसे खींचिये। इससे मेरा सन्देह मिट जायगा।" यह कहकर परशुराम धनुष देने लगे, लेकिन वह तो अपने-आप ही चढ़ गया। यह देखकर परशुरामजी को बहुत अचरज हुआ और वह श्रीराम के प्रभाव को पहचान गये। उनका शरीर पुलकित हो उठा, वह बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर रामचन्द्रजी की विनती करने लगे। उस समय उनका हृदय प्रेम से छलक रहा था।

राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचेहुं मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहि चढ़ि गयऊ।
परसुराम मन बिसमय भनुऊ॥
जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले वचन, हृदय न प्रेमु समात॥

अनेक प्रकार उनकी विनती करके वहां से तप करने के लिए वन मे चले गए। यह देखकर वहां जो दुष्ट राजा थे वे डर गये और चुपचाप भाग गये। चारों ओर हर्ष छा गया। बाजे बजने लगे, मंगल साज सजाये जाने लगे और मृदु कंठवाली सुन्दर स्त्रियां सुरीले गीत गाने लगीं। सीताजी का भय जाता रहा और महाराज जनक ऐसे प्रसन्न हुए मानो कंगाल को खजाना मिल गया हो। उन्होंने मुनि विश्वामित्र को प्रणाम किया और कहा, "आपकी कृपा से ही यह सब हुआ है। अब मुझे क्या करना चाहिए।"

मुनि बोले, "सुनो यह विवाह धनुष के अधीन था, उसके टूटते ही हो गया। सब लोग इस बात को जानते हैं; तो भी

तुम वैसा ही करो जैसा तुम्हारे कुल में प्रचलित हो और महाराज दशरथ के पास दूत भेजो, जिससे वह यहां आ जायं।"

राजा ने उनकी आज्ञा मानकर उसी समय दूतों को बुलाया और अयोध्या भेज दिया। फिर सब प्रसन्न होकर अपने-अपने घर आए। मंडप सजाने की तैयारी होने लगी। ब्रह्मा की वंदना करके काम आरम्भ कर दिया गया। उस मंडप की सजावट अत्यन्त अद्‌भुत थी। उसका वर्णन करना बड़ा कठिन है। उस विचित्र मंडप का वर्णन हो भी नहीं सकता। जिस मंडप में जानकीजी दुलहिन हों, किसी कवि की ऐसी बुद्धि कहां जो उसका वर्णन कर सके। वह मंडप तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध होना ही चाहिए। जिस किसीने भी उस समय जनकपुरी को देखा, उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पड़े। उस समय छोटे-से-छोटे व्यक्ति के घर में इतनी सम्पदा थी कि उसे देखकर इन्द्र भी मोहित हो जाता था।

जेइ तिरहुति तेहि समय निहारी।
तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा।
सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

: १३ :

सुखद संवाद

स्वयंवर की पत्रिका लेकर महाराज जनक के दूत अयोध्यापुरी पहुंचे। वहां पहुंचते ही उन्होंने राजद्वार पर जाकर

अपने आने की खबर दी । तत्काल महाराज ने उन्हें भीतर बुलवाया ।

यथाविधि अभिवादन के बाद दूतों ने राजा जनक की पत्रिका भेंट की । उसे बांचते-बांचते महाराज दशरथ इतने आनन्द-विभोर हो गए कि कई क्षण तक तो वह कुछ बोल भी न सके । संभलते ही उन्होंने आदि से अंत तक सारी पत्रिका सभासदों को सुनाई । सुनते ही सभासदों की खुशी का ठिकाना न रहा । बात-की-बात में यह खबर भरत और शत्रुघ्न ने भी सुनी । वे भी तत्काल वहां आ पहुंचे और उतावले होकर राम-लक्ष्मण के बारे में पूछने लगे । रामचन्द्रजी द्वारा धनुषभंग और लक्ष्मण के क्रोध की बातें सुन-सुनकर सबके हर्ष का पारावार न रहा । दोनों भाइयों की प्रसन्नता तो जैसे शरीर में समाती ही न थी । भरत के पवित्र प्रेम से सारी सभा में प्रेम की वर्षा-सी हो रही थी ।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता ।
अधिक सनेह समात न गाता ।।
प्रीति पुनीत भरत कै देखी ।
सकल सभा सुखु लहेउ बिसेखी ।।

उपरांत महाराज ने दूतों को पास बिठा लिया और बार-बार उनसे राम-लक्ष्मण की कुशल-क्षेम पूछने लगे ।

दूतों ने वहां के सब समाचार सुनाये । रामचन्द्रजी ने किस प्रकार धनुष तोड़ा, किस प्रकार परशुरामजी का गर्व खंडित किया— आदि-आदि बातें उन्होंने विस्तार से बताईं, जिन्हें सुनकर सभासहित राजा प्रेम में मग्न हो गये । इसके बाद

वह तुरंत गुरु वसिष्ठ के पास पहुंचे और उनको भी वह पत्रिका पढ़ सुनाई। वसिष्ठ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "पुण्यवान पुरुषों के लिए पृथ्वी सुखों से भरी हुई है। जिस प्रकार नदी समुद्र के पास जाती है, हालांकि समुद्र को नदी की लालसा नहीं है, वैसे ही सुख और संपत्ति बिना बुलाये धर्म-परायण व्यक्ति के पास जाते हैं।"

पत्रिका बांचते-बांचते राजा दशरथ आनंद-विभोर हो उठे

गुरु वसिष्ठ के यहां से राजा महलों में पहुचे। राज-पुत्रों का समाचार सुनकर रानियां ऐसे प्रसन्न हुईं, जैसे मोरनियां बादलों की गरज सुनकर फूल उठती हैं। बार-बार उस पत्रिका को वे छाती से लगाने लगीं। उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाया और आनंदपूर्वक उन्हें दान दिया। भिक्षुओं को बुला-

कर भिक्षा दी । समूची अयोध्या नगरी आनंद-रस में सराबोर हो गई ।

भुवन चारि दस भरा उछाहू ।
जनक सुता रघुबीर बिआहू ।।
सुनि सुभ कथा लोक अनुरागे ।
मग, गृह, गली संवारन लागे ।।

मंगल-गीत गाये जाने लगे । अयोध्यावासी प्रेम-मग्न होकर गलियों, घरों और राज-मार्गों की सजावट करने लगे ।

गावहिं सुन्दरि मंगल गीता ।
लै-लै नाम रामु अरु सीता ।।
बहुत उछाह भवन अति थोरा ।
मानहुं उमगि चला चहुं ओरा ।।

: १४ :

बरात की शोभा

राजा दशरथ ने भरत को बरात सजाने का आदेश दिया । बात-की-बात में सारा नगर बरात की तैयारियों में लग गया। इस बरात की शोभा का शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता । सब लोग रथों, घोड़ों, हाथियों और पालकियों पर चढ़-चढ़कर नगर के बाहर जमा हो रहे थे । अच्छे-अच्छे सगुन होने लगे । ऊंची अटारियों पर चढ़कर स्त्रियां थालियों में मंगल आरती लिये उन्हें देख रही थीं और नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही थीं । उनके आनंद का वर्णन कौन कर सकता है ।

चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी।
लिये आरती मंगल थारी॥
गावहिं गीत मनोहर नाना।
अति आनंद न जाइ बखाना॥

इसी बीच सुमंत दो सुन्दर रथ ले आये। एक पर महाराज ने बड़े प्रेम से वसिष्ठ को बैठाया और दूसरे पर वह स्वयं चढ़े। उस समय वह ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो देव गुरु बृहस्पति के साथ इंद्र हों। जब सब व्यवस्था पूर्ण हो गई तो गुरु की आज्ञा पाकर बरात चल पड़ी। देवता फूलों की वर्षा करने लगे। शहनाइयां बजने लगीं। नाना प्रकार के आनन्द-स्वर गूंजने लगे।

महाराज दशरथ के आने का समाचार पाकर राजा जनक ने नदियों पर पुल बंधवा दिये। मार्ग में ठहरने के लिए सुंदर-सुंदर पड़ावों का प्रबंध कर दिया। वहां पर बराती लोग अपनी-अपनी पसंद के अनुसार भोजन, वस्त्र आदि पाते थे। नित नये सुखों को पाकर बराती अपने घरों को भूल गये। जब बरात मिथिला के निकट पहुंची तो नगाड़ों की आवाज सुनकर अगवानी करनेवाले उनका स्वागत करने को आगे आये। बरात को देखकर उनके हृदय में आनंद छा गया। मिथिलापुरी की सजधज देखकर बरात के नगाड़े और जोर-जोर से बजने लगे। शहनाइयों और शंखों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। बरात की शोभा निहारने के लिए समूची जनक-पुरी समुद्र की भांति उमड़ पड़ी थी। मिथिला के नर-नारी पुष्प-वर्षा कर रहे थे।

गुरु की आज्ञा पाकर बरात चल पड़ी

यथाविधि स्वागत-सत्कार के बाद बरात जनवासे की ओर चल पड़ी। पिता के आने का समाचार पाकर राम-लक्ष्मण आनंद से पुलकित हो उठे। संकोचवश वे गुरु जी से कुछ नहीं कह सकते थे, परन्तु उनके मन में पिता को देखने की बड़ी इच्छा थी।

पितु आगमन सुनत दोउ भाई।
हृदय न अति आनन्दु अमाई॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं।
पितु दरसन लालचु मन माहीं॥

विश्वामित्रजी उनके मन की बात जान गये और उनको लेकर जनवासे की ओर चले। महाराज ने उन्हें आते देखा तो पुलक उठे। पहले उन्होंने मुनि विश्वामित्र को प्रणाम किया, फिर दोनों भाइयों को दंडवत प्रणाम करते देखकर उन्होंने उन्हें हृदय से लगा लिया। उस समय उनका दुःख इस प्रकार मिट गया, मानो मृत शरीर को प्राण मिल गये हों।

पुनि दण्डवत करत दोउ भाई।
देखि नृपति उर सुखु न समाई ।।
सुत हियं लाइ दुसह दुखु मेटे।
मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे ।।

इस प्रकार सब लोग आपस में प्रेम-सहित मिले। जनकपुरी में आनन्द-ही-आनंद छा गया। पुरवासी सोचने लगे कि अब हम रामचन्द्रजी का विवाह देखेंगे। ये दोनों भाई बार-बार हमारे अतिथि हुआ करेंगे। नारियों ने जब भरत-शत्रुघ्न को देखा तो वे भरत की राम से और शत्रुघ्न की लक्ष्मण से तुलना करके उनका नाना प्रकार से वर्णन करने लगीं।

लगन से कई दिन पहले बराती आ गये थे। आनंद में वे दिन कैसे बीत गये, इसका किसीको भी पता न लगा और बात-की-बात में मंगलदायक लगन का दिन आ गया। हेमंत ऋतु थी, अगहन का सुहावना महीना था। ग्रह, नक्षत्र और दिन सब भांति श्रेष्ठ विचारकर ब्रह्माजी ने मुहूर्त निकाला और नारदजी के हाथ लगन-पत्रिका राजा जनक के पास भेज दी,

जिसकी उनके गणकों ने भी यथाविधि गणना की ।

मंगल मूल लगन दिनु आवा ।
हिम रितु अगहनु मासु सुहावा ।।
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू ।
लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ।।
पठै दीन्हि नारद सन सोई ।
गनी जनक के गनकन्ह जोई ।।

: १५ :

जनकपुरी में स्वागत

जनकजी ने अपने पुरोहित और मंत्रियों को बुलाया । वे सब मंगल वस्तुएं सजाकर बरात को लेने के लिए चले । निमंत्रण पाकर राजा दशरथ ने गुरु वसिष्ठ से पूछा और कुल की सब रीतियों को संपन्न किया । बरात चली ।

बरात के आने का समाचार पाकर इधर भी जोर-जोर से नगाड़े बजने लगे और लोग हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजा-कर अगवानी के लिए चले ।

आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान ।
सजि गज रथ पदचर तुरंग, लेन चले अगवान ।।

उस समय महाराजा दशरथ और उनके राजकुमारों का जो रूप था, उसका वर्णन करना कठिन था । वे सब प्रकार से सुंदर थे । जिस घोड़े पर रामचंद्रजी विराजमान थे उसकी चाल

ऐसी थी कि देखकर गरुड़ भी लजा जाय। वह इतना सुंदर था, मानो कामदेव ने ही घोड़े का रूप धारण कर लिया हो।

जब बरात के चलने का समाचार पहुंचा तो अनेक प्रकार से आरती सजाकर और सब प्रकार के मंगल द्रव्य लेकर स्त्रियां, आनंद में मग्न, परछन के लिए चल पड़ीं। उन्होंने रंग-बिरंगी सुंदर साड़ियां पहन रखी थीं। शरीर पर नाना प्रकार के आभूषण थे। कोयल को भी लजानेवाली वाणी में वे मनोहर गीत गा रही थीं। रामचंद्रजी का वर-वेष देखकर सीताजी की माता के मन में जो सुख हुआ उसे हजारों सरस्वती और शेषनाग भी सौ कल्पों तक नहीं कह सकते। मंगल अवसर जानकर नेत्रों के जल को रोके हुए वे प्रसन्न मन से परछन करने लगीं। वेद और कुल के आचार के अनुसार उन्होंने सब व्यवहार भली भांति किये।

जो सुखु भा सिय मातु मन, देखि राम वर वेष।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा शेष॥

नयन नीर हठि मंगल जानी।
परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेदबिहित अरु कुल आचारू।
कीन्ह भली बिधि सब व्यवहारू॥

: १६ :

विवाह-संस्कार

पंच शब्द, पंच ध्यान और मंगलगान के बाद रानी ने आरती करके अर्घ्य दिया, और तब रामचन्द्रजी मंडप की

रामचन्द्रजी मंडप की ओर चले

ओर चले। दशरथजी अपनी मंडलीसहित वहां विराजमान हुए। ब्राह्मण समयानुकूल शांतिपाठ करने लगे। रामचन्द्रजी को आसन पर बिठाकर, आरती करके, दूल्हा को देखकर स्त्रियां सुखी होने लगीं। ढेर-के-ढेर मणि, वस्त्र और गहने

निछावर करके मंगल-चार गाने लगीं। देवता ब्राह्मणों का वेश धारण करके वहां कौतुक देखने के लिए आ गये और रघु-कुलरूपी कमल को खिलानेवाले सूर्य राम का रूप निरखकर अपने जीवन को सफल मानने लगे।

बैठारि आसन आरती करि निरखि बरु सुख पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि बारहिं नारि मंगल गावहीं॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि सुफल जीवन लेखहीं॥

सब प्रकार की रीतियां करके महाराज जनक दशरथजी से बड़े प्रेम से मिले। दोनों महाराज इस प्रकार शोभित होने लगे कि उनकी उपमा नहीं मिल सकती। दोनों में बड़ा प्रेम पैदा हो गया। महाराज जनक दशरथजी को सुन्दर पांवड़े और अर्घ्य देते हुए बड़े आदर के साथ मंडप में ले आये। फिर उन्होंने अपने कुल के इष्ट देवताओं के सामने वसिष्ठजी, विश्वामित्रजी, वामदेवजी, आदि ऋषियों की पूजा की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद राजा दशरथ की पूजा भी उन्होंने इस प्रकार की, मानो वह महादेव हों। उन्हीं के समान उन्होंने दूसरे बरातियों की भी पूजा की। सबको उचित आसन दिये। यह सब देख-देखकर लोग बहुत ही प्रसन्न होने लगे। उसी समय वसिष्ठजी ने आदरपूर्वक शतानन्दजी को बुलाया और कहा, "आप जाकर राजकुमारी को जल्दी ले आइये।"

यह सूचना पाकर रानी और कुल की दूसरी बूढ़ी स्त्रियां

मंगल गीत गाने लगीं। सखियां सीताजी का शृंगार करके मंडल बनाकर उन्हें मंडप में ले चलीं। सीताजी स्त्रियों के इस समूह में इस प्रकार दीखती थीं, मानो छविरूपी स्त्रियों के समूह में साक्षात् परम मनोहर सौंदर्यरूपी स्त्री शोभायमान हो रही हो।

सोहति बनिता वृन्द महुं, सुहावनि सीय।
छवि ललनागन मध्य जनु, सुषमा तिय, कमनीय॥

उन्हें देखकर सबने मन-ही-मन प्रणाम किया। रामचन्द्र-जी तो कृत्य-कृत्य हो गये। राजा दशरथ भी बहुत प्रसन्न हुए। उनके हृदय में जितना आनन्द था वह कहा नहीं जा सकता। सब नर-नारी प्रेम और आनन्द में मग्न हो गये। कुल-गुरुओं ने अवसर के अनुरूप सब रीतियां सम्पन्न कीं। इसके बाद गौरी, गणेश और ब्राह्मणों की पूजा की। देवता स्वयं प्रकट होकर पूजा ग्रहण करने लगे। उन्होंने आशीर्वाद दिया और अत्यन्त सुख पाया। मधुपर्क आदि जिस किसी भी मांगलिक पदार्थ की मुनि लोग चाह करते, सेवक उसी समय सोने के बर्तनों में ले आते।

आचारु करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुखु पावहीं॥
मधुपर्क मंगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुं चहें।
भरे कनक कोपर कलस सो सब लिएहिं परिचारक रहें॥

इस प्रकार पूजा होने के बाद मुनियों ने सीताजी की माता को बुलवाया। यह सुनकर सुहागिन नारियां आदरपूर्वक उन्हें

लिवा लाईं। उस समय सुनयनाजी जनकजी की बाईं ओर इस तरह शोभायमान हो रही थीं, मानो हिमाचल के साथ मेना शोभित हों। उन्होंने आनंद-विह्वल होकर रामचन्द्रजी के चरणों की पूजा की। दोनों कुलों के गुरु बार-बार दूल्हा-दुलहिन की हथेलियों को मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण होते हुए देखकर सब देवता और मुनि आनंदित हो उठे। सुख के मूल दूल्हा को देखकर राजा-रानी का शरीर पुलक उठा और हृदय आनंद से उमग उठा। राजाओं में श्रेष्ठ महाराज जनक ने लोक और वेद की रीति के अनुसार कन्यादान किया। जैसे हिमवान ने शिवजी को पार्वती और सागर ने भगवान विष्णु को लक्ष्मी दी थीं उसी भांति महाराज जनक ने रामचन्द्रजी को सीताजी भेंट कीं। इस प्रकार संसार में एक नई कीर्ति छा गई। रामचन्द्रजी की सांवरी सूरत ने विदेह महाराज को सचमुच विदेह कर दिया, अर्थात् वे देह की सब सुध-बुध खो बैठे। विधिपूर्वक हवन करके गठजोड़ी की गई और फिर भांवरे पड़ने लगीं।

बर कुंअर करतल जोरि साखोच्चार दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहन बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनंद भरैं॥
सुखमूल दूलह देखि दम्पति पुलक तन हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई॥
क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सांवरी।
करि होम बिधिवत गांठ जोरी होन लागी भांवरी॥

सब लोग उत्सुक होकर भांवरें पड़ती देखने लगे। भावरों के बाद रामचन्द्रजी ने सीताजी की मांग में सिंदूर भरा। उस समय ऐसा लगता था, मानो कमल को लाल पराग से अच्छी तरह भरकर अमृत के लोभ से सांप चंद्रमा को सजा रहा हो। इसके बाद वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर दूल्हा और दुलहिन एक आसन पर बैठे। राम और जानकी को वर के आसन पर बैठे देखकर दशरथजी के मन में बहुत आनंद हुआ। अपने अच्छे कर्मों के कल्पवृक्ष पर नये फूल देखकर वह बार-बार पुलक उठे। चौदह भुवनों में उत्साह भर गया। सबने कहा, "रामचन्द्रजी का विवाह हो गया। जीभ एक ही है और यह मंगल महान है। इसका वर्णन किस प्रकार हो सकता है।"

बैठे बरासन राम जानकि मुदित मन दसरथ भए।
तनु पुलकि पुनि-पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए ।।
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगल महा ।।

: १७ :

उसी मंडप में

इसी समय वसिष्ठजी की आज्ञा पाकर जनकजी ने मांडवी, श्रुतकीर्ति और उर्मिला इन तीनों राजकुमारियों को भी बुलवाया। कुशध्वज की बड़ी कन्या मांडवी को, जो गुण, शील सुख और शोभा की खान थी—सब प्रकार की रीतियां करके महाराजा जनक ने प्रेमपूर्वक भरतजी को ब्याह दिया। सीता-

जी की छोटी बहन उर्मिला का, जो सब सुंदरियों में शिरोमणि थी, विवाह सब प्रकार सम्मान के साथ लक्ष्मणजी के साथ संपन्न हुआ। जिनका नाम श्रुतकीर्ति है, जो सुंदर नेत्रोंवाली और सुंदर मुखवाली हैं, सब गुणों की खान हैं, जिनका रूप और शील प्रकट है, राजा ने उनका विवाह शत्रुघ्न के साथ कर दिया।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साजु संवारि कै।
मांडवी स्रुतिकीरति उरमिला कुंअरि लई हंकारि कै।।
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामयी।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई।।
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो जनक दीन्हीं ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै।।
जेहि नामु स्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी।।

इन जोड़ियों को देखकर उपस्थित लोग बहुत ही हर्षित हुए। महाराज दशरथ को ऐसा लगा, मानो वे चारों फल--धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—पा गये हों। दहेज तो इतना अधिक था कि उसका वर्णन कैसे किया जाय। महाराज दशरथ ने उस दहेज में से मांगनेवालों को, जिसे जो अच्छा लगा, दे दिया। शेष सामान को जनवासे भिजवा दिया। इस प्रकार सबका उचित सम्मान करके महाराज जनक अपने छोटे भाई सहित हाथ जोड़कर विनयपूर्वक दशरथजी से बोले, "राजन्, आपके साथ संबंध हो जाने से अब हम सब प्रकार बड़े हो गये

हैं। राज-पाट सहित हम दोनों भाइयों को अब आप बिना दाम का दास समझिये। हमारी इन लड़कियों को सेविकाएं मानकर दया करके इनका पालन कीजिये। मैंने आपको यहां बुलाया, यह मेरी धृष्टता थी। क्षमा चाहता हूं।"

यह सुनकर सूर्यकुल के भूषण महाराज दशरथ ने अपने समधी जनकजी का और जनकजी ने महाराज दशरथ का सब प्रकार से सम्मान किया। एक-दूसरे के प्रति जो विनय प्रकट की वह कही नहीं जा सकती। दोनों के हृदय-घट प्रेम से छलक रहे थे।

कर जोरि जनक बहोर बन्धु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बचन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥
ए दारिका परिचारिका करि पालबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठ्यों कई॥
पुनि भानुकुल भूषन सकल सनमान विधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥

इसके बाद राजा दशरथ जनवासे को चले और मुनि की आज्ञा पाकर सुंदर सखियां मंगल-गान गाती हुईं दूल्होंसहित दुलहिनों को लेकर कोहबर की ओर चलीं।

: १८ :

सत्कार

हंसी-खेल और विनोद के कारण वहां पर जो आनंद और प्रेम उत्पन्न हुआ उसका वर्णन करना बड़ा कठिन है। सारा रनिवास हंसी-विलास के आनंद में डूब गया। वहां से सलोनी सखियां वर-कन्याओं को जनवासे में ले चलीं। उस समय सारे नगर में बड़ा ही आनंद छाया हुआ था। सब आशीर्वाद दे रहे थे—'ये चारों सुंदर जोड़ियां चिरंजीव हों।' इस आनंद-विनोद के बाद चारों कुमार अपनी बहुओं समेत पिताजी के पास पहुंचे। शुभ मंगल और आनंद से सारा जनवासा उमड़ पड़ा। ठीक समय पर रसोई का प्रबंध किया गया और बरातियों को बुलाया गया। नाना प्रकार के षट्रस-व्यंजन बनाये गये थे। जिस समय बराती लोग भोजन कर रहे थे, पुरवासिनें उनका नाम ले-लेकर मीठे स्वर में गालियां गा रही थीं। उन्हें सुनकर सब लोग प्रमुदित हो रहे थे। इस प्रकार जनकपुर में रोज ही नये मंगल होने लगे। दिन-रात पल के समान बीतने लगे। महाराज दशरथ ऋषि-मुनियों को बुलाकर बड़े आदर के साथ सबकी पूजा करते। याचकों को नाना प्रकार की सामग्री दान में देते। हर रोज सवेरे उठकर वह राजा जनक से बिदा मांगते, लेकिन जनकजी बड़े प्रेम से उनको रोक लेते।

आदर-सत्कार नित्य बढ़ता जाता था। प्रतिदिन बीसियों

प्रकार से बरातियों की खातिरदारी होती थी। नगर में नित्य नवीन आनंद और उत्साह मनाया जाता था। दशरथ का जाना किसी को भी नहीं सुहाता था। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये, मानो सब बराती प्रेम की रस्सी में बंध गये हों।

नित नूतन आदरु अधिकाई।
दिन प्रति सहस भांति पहुनाई॥
नित नव नगर आनन्द ऊछाहू।
दसरथ गवन सोहाइ न काहू॥
बहुत दिवस बीते एहि भांति।
जनु सनेह रजु बंधे बराती॥

: १९ :

हृदय-स्पर्शी विदाई

एक दिन विश्वामित्र और शतानंद ने राजा जनक को समझाकर कहा, "यद्यपि आप स्नेह के वश होकर छोड़ नहीं सकते, तो भी आप महाराज दशरथ को जाने की आज्ञा दीजिये।"

जनकजी बोले, "जैसी आज्ञा।"

उन्होंने मंत्रियों को बुलाया और कहा, "महाराज दशरथ जाना चाहते हैं, रनिवास में खबर कर दो।" क्षणभर में यह समाचार नगर भर में फैल गया। सब व्याकुल होकर एक-दूसरे से पूछने लगे। फिर वे इस प्रकार उदास हो गये,

जिस प्रकार संध्या के आने पर कमल मुरझा जाता है। महाराज जनक ने पुनः बहुत-सा दहेज दिया। बरात की विदा के समाचार पाकर रानियां भी ऐसी व्याकुल हो गईं, जैसे मछलियां थोड़े जल में छटपटाने लगती हैं। वे बारंबार सीताजी को अंक में भर लेतीं और आशीर्वाद देती हुई उनको सीख देतीं, "तुम सदा अपने पति की प्यारी रहो, तुम्हारा सौभाग्य अचल हो, यह हमारा आशीष है। सासु, ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना।" सयानी सखियों ने भी बड़े प्रेम से और बड़ी कोमल वाणी में स्त्रियों के कर्त्तव्य समझाये। इस प्रकार सब पुत्रियों को समझा-बुझाकर रानियों ने उन्हें हृदय से लगाया। वे बार-बार भेंट करतीं और कहतीं, "ब्रह्मा ने स्त्री-जाति को क्यों बनाया ?"

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं।
दइ असीस सिखावन देहीं॥
होएहु संतत पियहिं पियारी।
चिरु अहिबात असीस हमारी॥

सासु ससुर गुरु सेवा करेहू।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखी सयानी।
नारि धरमु सिखवहिं मृदु बानी॥

सादर सकल कुंअरि समुझाई।
रानिन्ह बारबार उर लाई॥

बहुरि बहुरि भेंटहिं महतारी ।
कहहिं बिरंचि रचीं कत नारी ।।

विदाई

इसी समय चारों भाई विदा कराने के लिए महल में पहुंचे । चारों राजकुमारों को देखकर सारा रनिवास आनंदित हो उठा । सासें उनकी आरती उतारने लगीं । बड़े प्रेम से उन्हें स्नान कराकर षट्रस भोजन कराये । उसके बाद रामचंद्रजी बड़े शील और संकोच से बोले, "पिताजी अयोध्यापुरी लौट जाना चाहते हैं । उन्होंने हमें विदा के लिए भेजा है । हे माता, हमें आज्ञा दीजिये और अपने बालक जानकर हम पर सदा अपना स्नेह बनाये रखिये ।" यह सुनकर सारा रनिवास उदास हो गया । उन्होंने सब कुमारियों को बड़े प्रेम से हृदय

से लगा लिया और फिर उनको उनके पतियों को सौंपकर बार-बार उनकी विनती करने लगीं। रामचंद्रजी ने भी विदा मांगकर उनको प्रणाम किया। आशीर्वाद पाकर बहुओं सहित वे वहां से चल पड़े। उस समय चारों ओर करुणा और विरह का दृश्य छा गया। पुत्रियों से बार-बार मिलती हुई माताओं को सखियों ने इस प्रकार अलग कर दिया, जिस प्रकार तुरंत ब्याई गाय को उसके बच्चे से अलग कर दिया जाता है। जानकीजी के पाले हुए तोते और मैना तक पुकारने लगे, "वैदेही कहां है ?" जो परम बैरागी कहलाते थे, उन जनकजी तक का सीताजी को देखकर धीरज छूट गया, ज्ञान की मर्यादा टूट गयी और उन्होंने बेटी को हृदय से लगा लिया। बुद्धिमान मंत्रियों के बार-बार समझाने पर उन्होंने सुंदर पालकियां मंगवाईं और शुभ मुहूर्त में कन्याओं को उनपर सवार कराया और उनको बहुत प्रकार से समझाया कि स्त्रियों के क्या धर्म होते हैं। इसके बाद सब लोग उनको पहुंचाने के लिए साथ-साथ चले।

: २० :

वापसी

इस प्रकार करुणा, विरह, प्रेम और आनंद के इस वातावरण में जब चारों ओर शुभ सगुन हो रहे थे, बाजे बज रहे थे, राजा दशरथजी अयोध्यापुरी को चल पड़े। उन्होंने विनती करके सब लोगों को लौटा दिया, परन्तु राजा जनकजी प्रेम-

वश लौटना नहीं चाहते थे। दशरथजी ने उनसे फिर कहा, "हे राजन्, बहुत दूर आ गये, अब लौटिये।" वह रथ से उतरकर खड़े हो गये। उनकी आंखों में प्रेम के आंसू भर आये। जनकजी हाथ जोड़कर स्नेहरूपी अमृत में भीगी वाणी में बोले, "मैं किन शब्दों में किस प्रकार आपकी विनती करूं। हे महाराज, आपने मुझे गौरव प्रदान किया।"

पुनि कह भूपति बचन सुहाए।
फिरिअ महीस दूरि बड़ि आए॥
राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े।
प्रेम प्रवाह विलोचन बाढ़े॥
तब बिदेह बोले कर जोरी।
बचन सनेह सुधा जनु बोरी॥
करौं कवन बिधि बिनय बनाई।
महाराज मोहिं दीन्हि बड़ाई॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक वार्तालाप के बाद जनकजी ने मुनियों को सिर नवाया और अपने दामादों से मिले, नाना प्रकार से उनकी प्रशंसा की तथा उन्हें आशीर्वाद दिया। सब लोग परस्पर प्रेम के वश में होकर बार-बार आपस में सिर नवाने लगे।

अन्त में जनकजी ने विश्वामित्रजी के चरण पकड़ लिये और बोले, "आपके दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो किसीको प्राप्य नहीं है वह अप्राप्य मुझे आपके दर्शन के कारण मिल गया है।"

इस प्रकार विनती करके तथा उनका आशीर्वाद पाकर राजा जनक लौट पड़े।

: २१ :

अयोध्यापुरी में

बीच-बीच में सुंदर स्थानों पर ठहरती हुई तथा मार्ग के लोगों को सुख देती हुई वह बरात एक दिन शुभ वेला में अयोध्यापुरी के समीप जा पहुंची। उसके आने का समाचार पाकर नगर में आनंद छा गया। सब लोग अपने-अपने घरों, बाजारों, गलियों आदि को सजाने लगे। उस समय की राजमहल की शोभा का कौन वर्णन कर सकता है ? उसकी सजावट देखकर कामदेव भी मोहित हो उठा। सब मातायें प्रेम के वश होकर बेसुध होने लगी। पूजन और दान होने लगा। मंगल-साज सजने लगे। मंगल-गीत गाये जाने लगे।

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा।
पुर प्रवेसु रघुकुल मनि कीन्हा॥
सुमिरि संभु गिरिजा गनराजा।
मुदित महीपति सहित समाजा॥

शुभ मुहूर्त में गुरु की आज्ञा पाकर महाराज दशरथ ने नगर में प्रवेश किया। उस समय जो जय-ध्वनि हुई और वेद-मंत्रों का उच्चार हुआ वह दसों दिशाओं में सुनाई दे रहा था। बाजे बज रहे थे। पुरवासी इतने प्रसन्न थे कि वह सुख उनके मन में नहीं समाता था। उन्होंने राजा की वंदना की। स्त्रियां आरती करने लगीं और पालकियों के पर्दे उठा-उठाकर दुलहिनों को देखने लगीं।

आरति करहिं मुदित पुरनारी ।
हरषहिं निरखि कुंअर बर चारी ॥
पिविका सुभग ओहार उघारी ।
देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी ॥

एहि विधि सबहि देत सुख आये राजदुलार ।
मुदित मातु परिछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार ॥

जब वे राजद्वार पर पहुंचे तो आनंद में मग्न होकर माताओं ने बहुओंसहित बेटों का परछन किया । अनेक अमूल्य वस्त्र-आभूषण उनपर न्यौछावर किये । इसके बाद वेद-विधि के अनुसार अर्घ्य-पांवड़े देते हुए वे उनको महलों में ले गईं । वहां उन्होंने चार बहुत ही सुंदर सिंहासनों पर उन्हें बिठाया, आरती की, और फिर अनेक वस्त्र न्यौछावर किये । सब माताएं आनंद से भरी हुई ऐसी शोभा दे रही थीं, जैसे किसी योगी ने परम तत्त्व को प्राप्त कर लिया हो, सदा के रोगी ने अमृत पा लिया हो, जन्म का दरिद्री पारस पा गया हो, अंधे को सुंदर नेत्र मिल गये हों, गूंगे के मुख पर मानो सरस्वती आ विराजी हो और शूरवीर ने मानो युद्ध में विजय पा ली हो ।

वस्तु अनेक निछवारि ओहीं ।
भरी प्रमोद मातु सब सोहीं ॥
पावा परम तत्त्व जनु जोगी ।
अमृत लहेउ जनु संतत रोगी ॥
जनम रंक जनु पारस पावा ।
अंधहि लोचन लाभु सुहावा ॥

मूक बदन जनु सारद छाई।
मानहु समर सूर जय पाई।।

इसके बाद राजा ने बरातियों को बुलाया और उन्हें अनेक प्रकार की वस्तुयें भेंट में दीं। आज्ञा पाकर वे अपने-अपने घर गये। याचक लोगों ने जो-कुछ मांगा, वही उन्हें मिला। उसके बाद गुरु, ब्राह्मणोंसहित राजा महल में पहुंचे। रानियों ने बड़े आदर के साथ ब्राह्मणों की पूजा की। बहुओंसहित सब राजकुमारों ने और रानियोंसहित राजा ने बार-बार मुनि विश्वामित्र की पूजा की। बोले, "हे नाथ, मेरे समान कोई सौभाग्यशाली नहीं है।" राजा ने उनकी प्रशंसा की और रानियोंसहित उनके पैरों की धूलि माथे पर चढ़ाई।

बहु बिधि कीन्हि गाधि सुत पूजा।
नाथ मोहि सम धन्य न दूजा।।
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरि।
रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरि।।

इसके बाद आदर के साथ उन्हें महल में उत्तम स्थान पर ठहराया। अनंतर राजा ने गुरु वसिष्ठ के चरण-कमलों की बार-बार बंदना की, फिर बड़े प्रेम से पुत्र और सारी संपत्ति को उनके सामने रख दिया। मुनिराज ने अपना नेग मांग लिया और बहुत प्रकार से उन्हें आशीर्वाद दिया।

सबको विदा करके महाराज अंदर रनिवास में गये और जिस तरह विवाह हुआ था, वह सबको सुनाया। राजा जनक के गुण, शील, गौरव तथा उनके प्रेम की रीति एवं उनके

ऐश्वर्य का विस्तार से वर्णन किया, जिसे सुनकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई । इसके बाद राजा ने कहा, "बहुएं अभी बच्ची हैं, पराये घर आई हैं । उनको इस तरह से रखना, जिस तरह तुम्हारे नेत्रों को पलकें रखती हैं ।" इस प्रकार बातें करते-करते रात हो गई और सब सोने के लिए चले । सोते समय माताएं रामचन्द्र से ताड़का-वध की कहानी सुनने लगीं और बलैया लेने लगीं । उन्होंने कहा, "जो कुछ हुआ है वह सब विश्वामित्रजी की कृपा से हुआ है ।" रामचन्द्रजी ने भी विनयभरे वचन कहकर अपनी माताओं को खुश किया और फिर सब सो गये ।

इसके बाद अयोध्या में नित्य मंगल, आनंद और उत्सव होने लगे । मारे आनंद के सारी अयोध्यापुरी उन्मत्त हो गई । दिन-पर-दिन आनंद अधिक बढ़ने लगा ।

मंगल मोद उछाह नित, जाहिं दिवस एहि भांति ।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक-अधिक अधिकाति ।।

कुछ समय इसी प्रकार आनन्द-प्रमोद में निकल गया । उसके पश्चात एक दिन शुभ मुहूर्त में कंकन खोले गये । उस दिन भी कम मंगल और आनंद नहीं हुआ । ऐसे नित नये सुखों को देखकर देवता भी ललचाने लगे और ब्रह्मा से अयोध्या में जन्म पाने की प्रार्थना करने लगे ।

विवाह समारोह समाप्त होने पर विश्वामित्रजी प्रति दिन जाने का आग्रह करने लगे, पर रामचन्द्रजी के स्नेह और प्रेम के कारण रुक-रुक जाते थे ।

आखिर एक दिन बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर विश्वामित्रजी विदा हुए, इसके बाद और लोग भी विदा लेकर अपने-अपने घर चले गये।

जब रामचन्द्रजी विवाह करके घर आये तब से अयोध्या में सब प्रकार से आनंद होने लगे। भगवान राम के विवाह में जैसा उत्सव हुआ, उसका वर्णन सरस्वती और शेषजी भी नहीं कर सकते।

आये ब्याहि राम घर जब तें।
बसे अनन्द अवध सब तब तें॥
प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू।
सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू॥
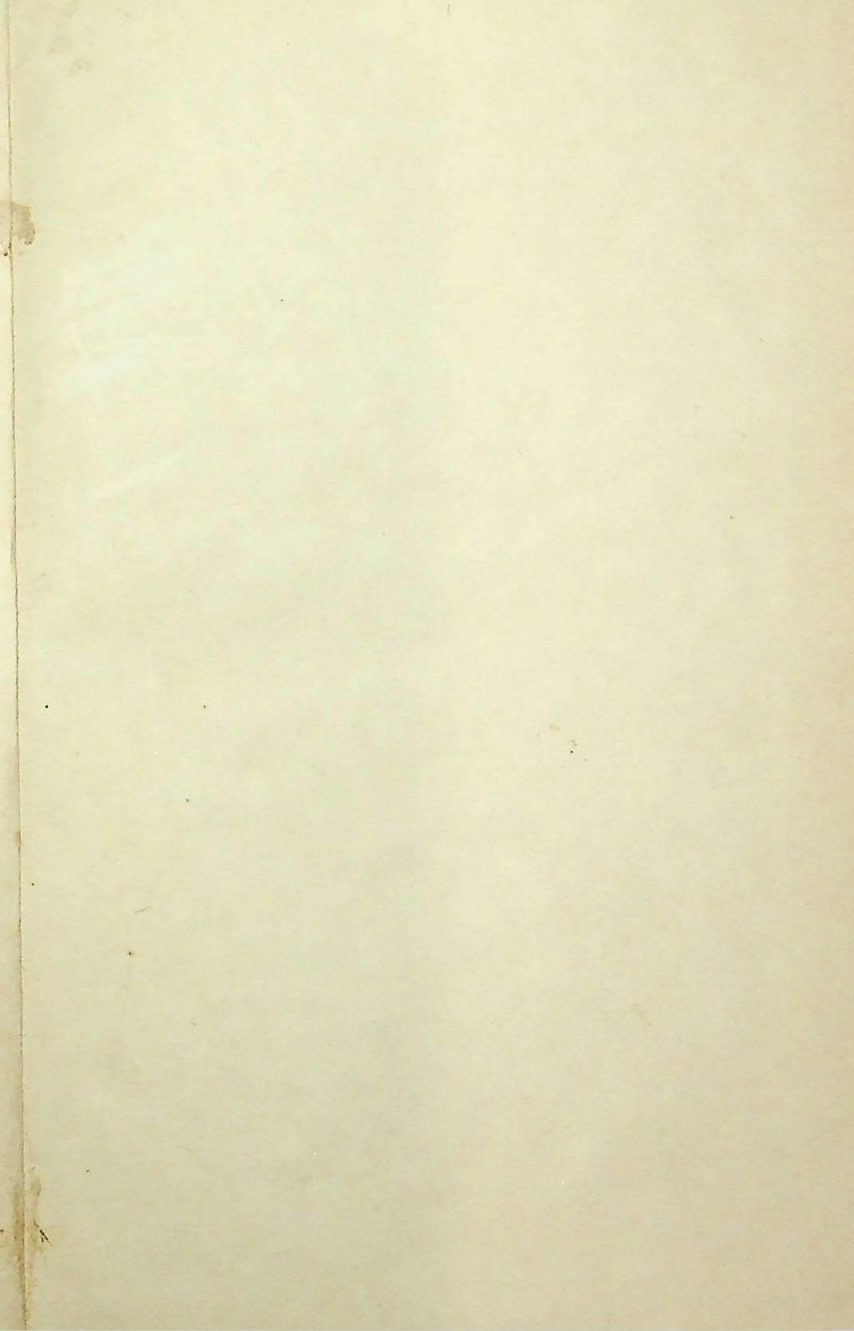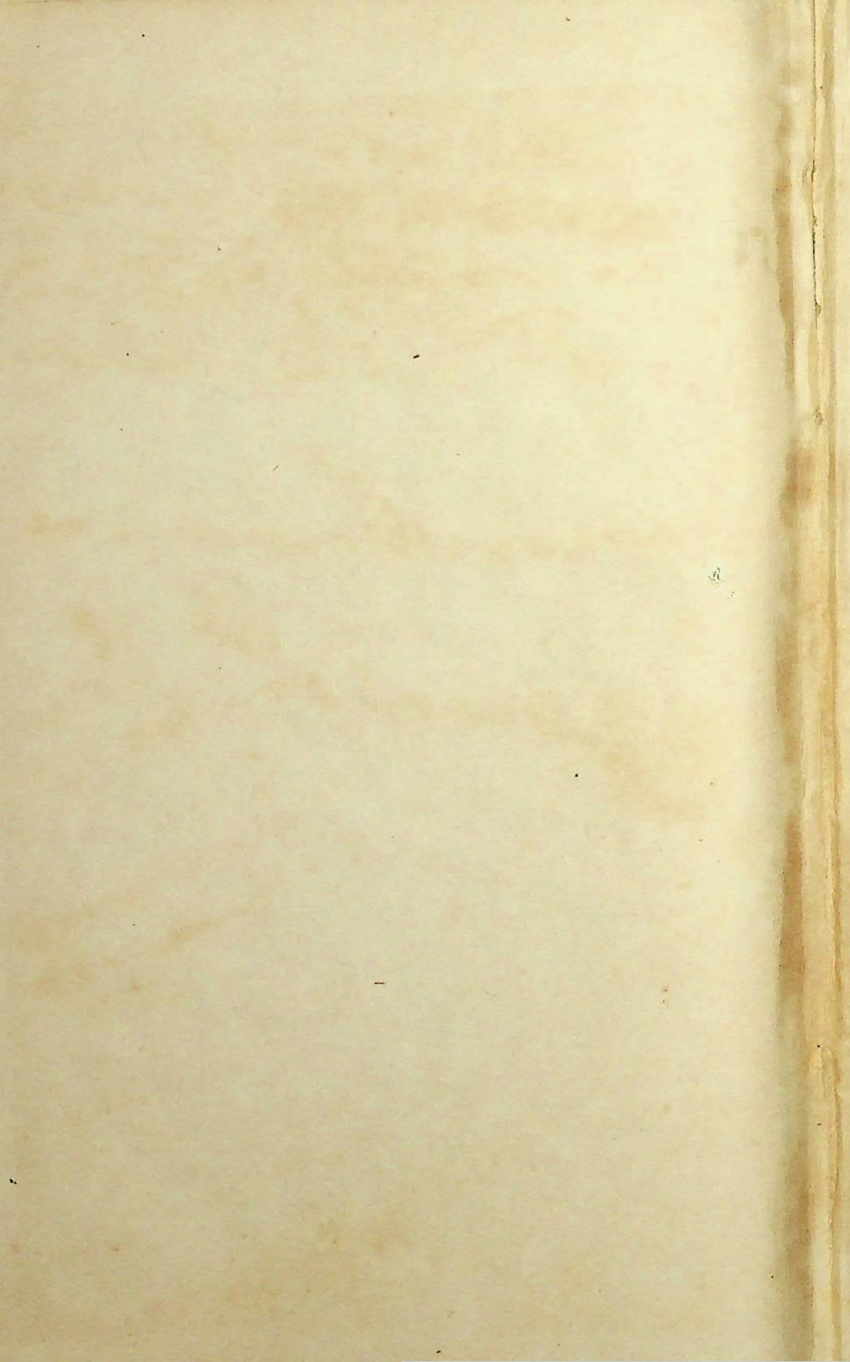
हमारा
रामायण-संबंधी साहित्य

दशरथ-नंदन श्रीराम
रामागण कालीन संस्कृति
रामायण कालीन समाज
रामकीर्त्ति
मर्यादा पुरुषोत्तम राम
बाल राम-कथा
राम-जन्म
राम वन-गमन
सीता-हर
लंका-वि

जब तक हमारी भारत भूमि में गंगा ... कावेरी प्रवहमान हैं तब तक सीता-राम की कथा भी पाबाल, स्त्री-पुरुष सबमें प्रचलित रहेगी, माता की तरह हमारी जनता की रक्षा करती रहेगी।

—च० राजगोपालाचार्य